मनुष्य बनो

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

ल फकीर चन्द जी महाराज

नवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

R. ৩.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णं मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४० | जौलाई-अगस्त १९९१ | अङ्क १०-११

गाफिल शब्दावली से—

शब्द

हंसो पर जो राज करे, वह हंसराज कहलाता है ।
प्यार करे भगवान से जो, वह वैसा ही बन जाता है ।१।
हंस की बृत्ति धारण करके, मोती चुगने होते हैं ।
मानसरोवर मैल उतारें, सुख आनन्द से सोते हैं ।२।
काग की वृत्ति छूट गई हंसों की संगत करने से ।
तीन ताप सब दूर हुये, संतों की शरणी पड़ने हैं ।३।
दसवें द्वारे पहुँच के भाई, हंस की पदवी मिलती है ।
नौ दरवाजों से ऊपर चड़, कली हृदय की खिलती है ।४।
हंसों की सोहबत में जाकर, सब काग बदलते जाते हैं ।
वो मान सरोवर के वासी, सत् चित आनन्द को पाते हैं ।५।
कोई नकल करेगा उनकी क्या, वो उड़ते हैं आसमानों में ।
वो अवगुण देख नहीं सकते, वो दया करो दीवानों पर ।६।
ऐसे ही तुम भी हंसराज, प्रशंसा मेरी करते हो ।
'गाफिल' से प्यार बढ़ाते हो, और बुरे कर्म से डरते हो ।

कर गुरु ऋण चुका रहा हूं। मुझे इसी काम में परम शान्ति और परमानंद मिलता हैं। इन पंक्तियों के द्वारा मैं आपसे अपना अनुभव बाँट रहा हूं और उस सच्चाई को बयान कर रहा हूं, जिसे भाषा में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

मेरी यही रहनी जो कथनी और करनी से ऊपर है, उन्मुखी रहनी है और सहज समाधि की अवस्था है। इस अवस्था में रहना कठिन भी है और आसान भी। कठिन इसलिए है कि आम लोग और निकटवर्ती सत्संगी सहयोगी और रिश्तेदार भी इस अवस्था को नहीं पहचान सकते और भ्रम में पड़कर स्वयं दुखी होते हैं उनका दुख सहन करना पड़ता है। यह थोड़ी सी कठिनाई है आसानी इस बात की है कि ज्यादातर मौज की धार में रहने से दुनियावी काम अपने आप हो जाते है। जो शक्ति पहले दुनियावी कामों को करने में और बुराइयों से बचने में लगती थी, वह अन्तरधारा बनकर परमानंद से सहज में मिला देती है। हर एक व्यक्ति यह अनुभव कर सकता है। शर्त यह है कि पूरी तरह से शरणागत हो जाये और सदगुरु को परमतत्तव मानकर उसकी आज्ञा का पालन करता चले। उन्मुनी रहनी वास्तव में उन्मुखी अर्थात् अन्तरमुखी रहनी है। 'उन' का मतलब उन अर्थात् अनामी अवस्था है। जो व्यक्ति 'उन' अथवा अनामी से जुड़ जाता है, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है और वह हर काम में समता, धर्य और शान्ति का व्यवहार करता है। इसीलिए कबीर साहब ने कहा है।

उतते सद्गुरु आइया जाकी बुद्धिमान धीर।
भव सागर के जीव को खेह लगावे तीर

सत्गुरु एव सच्चे ज्ञान में सच्ची अवस्था में, राधास्वामी अवस्था में रहने वाला व्यक्ति ही अपनी मिसाल के द्वारा अपने अनुभव को बांटने के द्वारा उन सभी जीवों को भव सागर से पार

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

R.S.

गुरु ब्रह्मा गुरू विष्णु: गुरूर्देव महेश्वर:
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनम:

गुरू महिमा

बिन गुरु ज्ञान की गम नहीं साधो ! ज्ञान है गुरू आधारा ।।
भरम भरम में जीव फँसाना, भटका बारम्बारा ।
जब गुरु मिले तो भेद बतावें, अन्तर देके सहारा ।।१।।
तीरत बरत में भरमें प्रानी सूझे न सार असारा ।
जब गुरु मिलै तो भेद बतावें, करैं सहज छुटकारा ।।२।।
ज्ञान ध्यान की समझ नहीं है, नाहिं विवेक विचारा ।
जब गुरू मिलै तो भेद बतावें, होय जीव उपकारा ।।३।।
जोग युक्ति का मरम कठिन है, क्या कोई जाने गँवारा ।
जब गुरु मिलै तो भेद बतावें, यों ही हो निस्तारा ।।४।।
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, धरा सन्त अवतारा ।
जब गुरू मिलै तो भेद बतावें, अन्तर शब्द भंडारा ५।।

R.S.

योग साधन की चौथी विधि

वचन १०४

सीमित और असीमित, असीमित और सीमित

असीमित के अन्तर्गत सीमित होता है और सीमित से असीमित जाना जाता है।

जिसमें किसी प्रकार की सीमा या बंदिश हो वह सीमित है और जिसमें किसी प्रकार की सीमा न हो वह असीमित है।

सीमा या बन्दिश को दूर कर दो तो सीमित भी असी हो जायगा। असीमित हो में सीमित रहता है और सी के बिना असीमित का ज्ञान नहीं होता। यह कहा जाता सीमित असीमित का ज्ञान प्राप्त करने के योग्य नहीं है यह ठीक भी है क्योंकि सीमित को जो ज्ञान प्राप्त होगा ज्ञान सीमित होगा, किन्तु ज्ञान तो होगा माना कि वह आंशिक ही सही। फिर भी वह आंशिक ज्ञान अनुभव बढ़ाने और बढ़ने में सहायक तो होता है।

१— यहाँ से पाठक ध्यान पूर्वक अध्ययन करें क्योंकि यहाँ से उन मत भेदों का वर्णन है जो दूसरे मत और राधास्वामी मत में पाये जाते हैं।

बढ़ना घटना सीमित ही में है। असीमित में न कोई वस्
बढ़ सकती है और न घट सकती है। इससे सिद्ध होता
कि जिसे आज हम सीमित समझ रहे हैं सम्भव है किसी
प्रकार से वह कल बढ़ जाय और जब वह बढ़ जायेगा,
उसमें भी असीमित पने की शान (विशालता) आ जायेगी।
उस समय उसके विषय में भी कहा जायेगा कि वह किसी
घटने बढ़ने के दोष से स्वतन्त्र हो गया।

खेत में क्यारियाँ बनीं हैं। किसी नहर से पानी आ रहा
है जो खेत में फैल रहा है। पानी तो हर जगह हर क्यारी में
है। क्यारी खेत नही है किन्तु वह खेत से भिन्न और पृथक
भी नहीं है। हाँ, वह खेत का भाग कही जा सकती है। वह
भाग इस कारण से है कि उसमें मेंड़ (सीमा) लगी हुई है।
यदि मेंड़ (बंदिश) न लगी होती तो खेत में क्यारियों का
विचार भी पैदा न होता। सीमा (बदिश)हैं। सीमा ही के कारण
खेत में पृथक-पृथक भागों का नाम क्यारी हो गया है। यह
सीमा असली है या कल्पित हैं,यह प्रश्न दुसरा है। हां, जब तक
क्यारी है, तब तक सीमा (मेंड़) की स्थिति ठीक ज्ञात होती
है। इसी कारण क्यारी को क्यारी कहना पड़ता है। यदि
सीमा (मेंड़) न होती तो क्यारी का नाम और रूप न होता।
नाम और रूप वास्तव में बंदिश (मेंड़) के रूप हैं।

यही सीमा (बंदिश)खेत की माप का पैमाना है जो क्यारियों
ही की दृष्टि से कहा जाता है कि खेत में उतनी या इस संख्या में
क्यारियाँ हैं। उसी पैमाने का नाम माप (बुद्धि) है। बुद्धि और
कुछ नहीं हैं। बुद्धि माया है। बुद्धि या माया दोनों ही पैमाने
हैं। पैमाना सदा छोटा होता है। यदि वह छोटा न होता तो
फिर आपके योग्य भी न होता। इसलिये जहाँ-जहाँ बुद्धि और
माया है वहाँ-वहाँ सीमित पने का नुक्स (दोष) है और

जहाँ सीमितपना नहीं होता वहां बुद्धि और माया का भी अभाव रहता है · बुद्धि तमीज या विवेक करने की शक्ति है अथवा विवेक करने और कराने की वस्तु है। विवेक वहाँ ही होता है जहाँ दो, चार, दस, बीस, हजार, दो हजार आदि के भिन्न रूप हैं। ब्रह्म यदि असीमित है तो वहाँ बुद्धि और माया की पहुंच नहीं है। यदि ब्रह्म में बुद्धि है और विवेक करने का गुण उसमें है तो वह अवश्य सीमित होगा। इसमें कोई शंका हो ही नहीं सकती। लेकिन जो ब्रह्म वादी हैं वह ब्रह्म को सीमित नहीं मानते। उनका ब्रह्म को सीमित न मानना प्रगट करता है कि वह ब्रह्म जो बुद्धि से परे की वस्तु समझते हैं। उस तक बुद्धि की गम नहीं होती।

क्यारी की मेंड़ हटा दो। क्यारी खेत हो जायेगी। खेत में और उसमें किंचित मात्र भी अन्तर न रहेगा, यहाँ तक कि सीमा को दूर करने पर यदि क्यारी के अस्तित्व की खोज करोगे तो उसी तरह उसका पता न मिलेगा, जैसे बुन्द सागर में मिल जाने से अपनी आँशिक स्थिति को बिल्कुल मिटा देता है।

क्यारी की सीमा दूर कर देने से उसमें स्वयं ही खेत की सब विशेषतायें आ जाती हैं। यदि खेत में शक्ति, विस्तार और योग्यता मानते हो तो वह अब सम्पूर्ण बातें क्यारी को प्राप्त हो गई।

— —

वचन १०५

रोक (बन्दिश) को दूर करना

रोक को दूर करने के लिये कभी-कभी दूसरे प्रकार की बन्दिश या रोक लगाने की आवश्यकता होती है।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

बिना बन्दिश या रोक लगाये बन्दिश को दूर करना कठिन क्या असम्भव ही है। यह बात कठिनता से समझ में आयेगी लेकिन बात सच्ची है। माना कि यह रोक लगाना केवल प्रारम्भिक सीढ़ी है, आगे चल कर न रहेगी, परन्तु प्रारम्भ में तो बन्द या रोक लगाना ही पड़ेगा।

इस बन्द लगाने का नाम संयम और सुधार है। बन्दिश हमेशा बंदिश से टूटती है। इच्छा की जड़ इच्छा रहित होने की इच्छा से कटती है, लेकिन यह संयम रूपी बंदिश कुछ इस प्रकार की है कि इसका सम्बन्ध मन की एक विशेष अवस्था पर स्थित करने से है अथवा स्थित करने की आदत के अभ्यास से सम्बन्धित है। रस्सी में गाँट पड़ गई है। वह प्राणों की ग्राहक है। जब तक गाँठ न खुलेगी व्याकुलता रहेगी। इसके खोलने के लिये चित्त के एकाग्र करने को परमावश्यकता है। एकाग्र चित्त होने से जब चित्त की व्याकुलता दूर होगी तब ही उसके खोलने में सफलता होगी। यह चित्त वृत्ति पर बंद लगाना है। इसी को निरोध (जब्त) कहते हैं।

मन का यह स्वभाव हो गया है कि अपना रुझान नीचे की ओर रखता है जहां पर परेशानियां हैं। किसी प्रकार उसे जकड़ में करके उसके रुझान को बदल देना है ताकि दृष्टि ऊपर की ओर हो जाय और इस निचले बन्धनों से स्वतन्त्र हो जाये। बन्धन नीचे है। ऊपर इसकी अपेक्षा स्वतंत्रता है और उसमें स्वतन्त्रता का प्रेम उत्पन्न करना है।

बाहर बन्धन है। उसको अन्तर्मुख होने के बंधन में लगा दिया जाय। अन्तर में उसकी अपेक्षा स्वतन्त्रता है। इस संयम रूपी बंद का अभिप्राय यह है कि इधर (विषयों) से इसका सम्बन्ध निर्बल कर दिया और उधर के सम्बन्ध को

सबल बनाया जाय।

वह जितना अन्तर्मुखी और स्वतंत्रताप्रिय होता जायेगा उतना ही उसकी दशा में एक विशेष प्रकार का रुचिकर परिवर्तन होना आरम्भ हो जायेगा। बाहरी और नीचे के बन्दों के क्रमशः खुलने से अब उसकी सुरत अन्तर या ऊँचे की ओर आकर्षित होगी। इसी अन्तर्मुखी तवज्जह के सिलसिले में बहिर्मुखी (स्थूल या विषयाकार) आवरणों का विनाश होता जावेगा। बन्धन की गाँठ वास्तव में हृदय ही में है। मन ने अन्तर बासर दोनों ही प्रकार के सामान के विचार से अपने आपको जकड़ रखा है, जिसके कारण द्विचिताई व दुविधा का शिकार हो रहा है। इसका सच्चा उपाय (उपचार) यही है कि वह अन्तर्मुख के साधन में लगाया जाय।

वचन १०६

मिथ्या विचारों का विरोध

क्यारी के उदाहरण में बताया गया है कि क्यारी के बन्द (मेंड़) काट देने से वह खेत हो जायेगी और खेत समस्त गुण उसमें पैदा हो जायगे।

इस बात के सुनने से बहुत से अल्प बुद्धि वाले ऐसे मिलेंगे जो शीघ्र ही यह परिणाम निकालेंगे कि जिस प्रकार क्यारी खेत हो गयी इसी प्रकार जीव भी ईश्वर हो जायेगा या ब्रह्म हो जायेगा।

एक मानी में तो ठीक है मगर दूसरे मानियों में बिल्कुल गलत है। ध्यान पूर्वक उसको समझना चाहिये।

खेत तो पहले भी खेत था। क्यारी भी उसमें थी। मेंड़ को

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

तोड़ देने से यह तो नहीं हुआ कि वह विशेष क्यारी ही खेत हो गयी। ईश्वर पहिले भी था और अब भी है। जीव के बन्धन कटने से यह कैसे समझ लिया जाय कि वह विशेष जीव ईश्वर हो गया। क्यारी तो क्यारी है। जब तक उसमें क्यारी पना है तब तक उसमें खेत पना नहीं है। खेत पना क्यारीपने से पहिले था और अब भी है और अन्त में भी रहेगा। वह एक है, उसके एक होने में न तो पहिले ही अन्तर था और न अब भी है। वह जैसा था वैसा ही है! हां यदि क्यारी में मेंड़ न रही तो वह क्यारी भी न रही। वह खेत में लय हो गयी। पहिले उसका नाम और रूप था। अब वह खो गया। वह खेत से पहिले भी मिली हुई थी। अब लय हो जाने से (नाम रूप मिट जाने से) खेत के स्वरूप से पृथक नहीं हुई और न उसके (मेंड़ के) टूटने से खेत में ही बढ़ातरी हुई। न उसके रहने से खेत में कमी था।

इसी प्रकार जीव के बन्धन जब टूट जाते हैं तो वह जीव कोई अन्य ईश्वर नहीं होता है, किन्तु उसका स्वरूप जीव दृष्टि से समाप्त हो जाता है। ईश्वर न बढ़ता है और न घटता है। जीव ईश्वर नहीं होता और न क्यारी खेत होती है।

यदि जीव ईश्वर हो जाता तो फिर एक ईश्वर की जगह असंख्य ईश्वर हो जाते और ईश्वर की एकता में अन्तर आ जाता। जीव जीव है और ईश्वर ईश्वर ही है। ईश्वर दो चार या दस बीस नहीं होते। जब यह बात है तो जीव फिर ईश्वर कैसे होने लगा। बात केवल इतनी होती है कि जीव-पने के नुक्स के दूर होने से जीव नहीं रहा। ईश्वर में अपनी ही विशेष दृष्टि से इस प्रकार मिल गया कि उसका नाम और रूप भी शेष नहीं रहा। जीव के जीव पने की निवृति हो गयी।

मनुष्य वेदान्त के ग्रन्थ को पढ़कर कहते हैं कि अहम् ब्रह्मास्मि ।" ब्रह्म कहा नहीं करता । जब वह एक ही है तो अपनी घोषणा किसको को सुनाये और क्यों सुनाये । उसका प्रयोजन क्या है ?

यह एक मुख्य बात है जो हृदयांगम करने की है ।

बहुधा ऐसे मनुष्य देखने में आते हैं जो "अहम् ब्रह्मास्मि" कहते रहते हैं और "अनल हक" का उच्चारण करते रहते हैं । प्रश्न किया जायगा कि क्या यह त्रुटि पर हैं ? और क्या उनका यह उच्चारण करना असत्य है ? हम उनको असत्य या गलत नहीं कहते किन्तु प्रश्न कर्ता को तो ठीक-ठीक समझा ही देना चाहते हैं कि जो मनुष्य अभी तक "अहम् ब्रह्मास्मि" की घोषणा सुना रहा हैं वह वास्तव में देहाभिमान से रहित नहीं हुआ है । उसका अहम भाव और व्यष्टि भाव शेष है । हाँ, यह अवश्य माना जा सकता है कि वह ब्रह्मपने का अभिमानी बन गया है । ब्रह्म होने का विचार उसमें प्रवेश करने लगा है । जब वह पूर्ण रूपेण उसमें तन्मय (लय) हो जावेगा, उस समय उसके मुख से फिर वह उच्चारण न होगा । यह केवल बीच की अवस्था है ।

ब्रह्म बनना और बात है और ब्रह्म का अभिमानी होना और बात है । यहां इतना तो स्वीकार करने में हम भी सहमत हैं कि ब्रह्म का विचार उसके रोम-रोम में भर रहा हैं और उस विचार में उसका हृदय या तो लय होकर निमग्न बन रहा है अथवा वह मिथ्याभिमानी हो गया है । दोनों ही प्रकार की दशायें त्रुटि से रहित नहीं हैं । उसको अभी तक वास्तविक उच्च कोटि की पात्रता प्राप्त नहीं हुई । खेत में लय होने वाली क्यारी अपने आपको खेत नहीं कहती । वैसे ही ब्रह्म में लीन हुआ जीव ब्रह्म बनने का दावीदार नहीं होता ।

जैसे ईश्वर एक है वैसे ही ब्रह्म भी एक ही है। इन शब्दों की व्याख्या धीरे-धीरे आगे के बचनों में कर दी जायेगी।

बचन १०७

संयम सम्बन्धी बन्द का मन्तव्य और महत्व

बुन्द समुद्र में यों ही लय नहीं हो जाती, किन्तु उसको भिन्न-भिन्न श्रेणियों से गुजरना पड़ता है, तब कहीं उसे यह अवस्था प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार जीव, ईश्वर या ब्रह्म में यों ही लीन नहीं होता वरन् उसको साधन करना पड़ता है। इन्हीं साधनों का नाम कर्म, उपासना और ज्ञान है। इनको वास्तविक समझ केवल गुरु के सत्संग से प्राप्त होती है। पुस्तकों के अध्ययन या सुनी सुनायी बातों को चित्त देने से काई काम नहीं बनता। साधन तो साधन करने से होगा, केवल पढ़ने से नहीं। यहाँ कारण और फल के क्रम से कार्य होना है। जो ज्ञान बिना साधन के प्राप्त होगा, वह अनउपयोगी होगा और जो ज्ञान साधन युक्त हैं वह जीवन का अङ्ग हो जावेगा। यह हम जानते हैं कि यदि मिट्टी को घोला जाय तो वह जल हो जावेगी और जल के साथ विशेष प्रयाग किया जावे तो वही अग्नि, वायु और आकाश के रूप में परिवर्तित हो जायेगी, किन्तु यह केवख ज्ञान ही ज्ञान है। उस समय तक यह ज्ञान हमारा जीवन संगी नहीं हो सकता, जब तक कि उन बातों को स्वयं करके न देख लेंगे। यह सम्भव है कि अनुमान अथबा अन्य प्रमाण से हम उस नियम को किसी सीमा तक समझ ल किन्तु वह समझना बूझना असली या क्रियात्मक जीवन के क्षेत्र में निरर्थक होगा। यह जगत कर्म क्षेत्र कहलाता है। यह केवल ज्ञान ही का नियम नहीं है किन्तु

साधन का भी मंडल है। सहस्त्रों वर्षों के अनुभव ज्ञान का भेद तो देते हैं परन्तु बिना करके देख लेने से सच्ची सन्तुष्ट नहीं होती। यदि कोई मनुष्य तन्त्र शास्त्र को पंडित से पढ़कर के मारण, मोहन और उच्चाटन की विद्या प्राप्त करले और उसका साधन न करे तो उससे लाभ क्या होगा। उस विद्या का होना और न होना समान है। वशीकरण, मारण और उच्चाटन करतव करने की वस्तु है। करतब बिना किये हुये नहीं होता।

जो कथन तन्त्र शास्त्र के सम्बन्ध में ठीक है वह ही आत्मिक ज्ञान के सम्बन्ध में भी सच्चा है। यहाँ भी मारण, मोहन और उच्चाटन किया जाता है। मन को दुनियाँ की ओर से फेर लेना उच्चाटन है, मन को निज स्वरूप के प्रेम में लगाना मोहन है और मन को उसमें लगाकर उसी के ध्यान में लय हो जाना मारण है। इसमें और उसमें केवल इतना अन्तर है कि वह वाह्य विद्या है और यह आन्तरिक विद्या है। उसका प्रयोग दूसरों पर होता है और इसका प्रयोग केवल अपने ऊपर होता है। दूसरों पर प्रयोग करने से विक्षेपता, बेचैनी और बन्धन बढ़ता है और अपने ऊपर प्रयोग करने से एकाग्रता, शान्ति और मुक्ति प्राप्त होती है। एक बहिर्मुखी है और दूसरा अन्तर्मुखी है किन्तु प्रयोग से रहित इन दोनों में से कोई भी नहीं है। दोनों ही के साधकों को मन को एक विशेष केन्द्र पर स्थापित करने की आवश्यकता है।

तन्त्र शास्त्र में चूँकि दूसरों के ऊपर प्रयोग करना होता है, विशेष प्रकार के देवता का इष्ट बाँधना पड़ता है जो वाहर प्रकट होता है और बाहर ही का काम करता है। इस वाह्य कार्य के कारण साधक के जीवन का परिणाम प्रायः दुःख मय होता है। और वे दिन प्रति दिन दुनियाँवी होते हुये बधनों की गिरहों (ग्रन्थियों) को बढ़ाते ही जाते हैं, लेकिन आत्मिक विद्या

का प्रयोग अपने ही ऊपर किया जाता है। इसमें केवल गुरु के इष्ट को धारण करना पड़ता है जो अपने ही अन्तर प्रकट होता है और अन्दर ही अन्दर उसके कार्य का सिलसिला चलता है। अन्तर में कार्य के कारण अध्यात्मिक साधक के जीवन का परिणाम सुख और शान्तिमय होता है और वह दिन प्रति दिन सूक्ष्म होता हुआ हृदय की ग्रन्थियों को खोलता हुआ सार तत्व का साक्षात्कार करके तृप्त हो जाता है।

यह अच्छा हैं या वह अच्छा है ? तुमने सिद्धि शक्ति भी प्राप्त की तो उसका हानि लाभ दूसरों को ही हुआ। तुम्हारे क्या हाथ लगा ? किन्तु इससे अपना ही लाभ होता है।अभ्यासी अपने अन्तर अनेक प्रकार के दृश्यों को देखता हुआ अंत में सार तत्व का साक्षात्कार कर लेता है जिससे, जिसमें और जिसके कारण सब कुछ है।

तन्त्र में अपने अन्तर से निकाल कर बाहर प्रगट करना पड़ता है और संत मत में वाह्य गुरु के दर्शन करके इसे अपने अन्तर में प्रकट करना होता है तथा गुरु का यही आंतरिक ध्यान साधन की सच्ची कुञ्जी बनकर आन्तरिक कपाटों को तड़ाक तड़ाक खोलता चला जाता है। जब तक यह कुँजी [illegible] नहीं आती है तब तक काम नहीं बनता। संयम सम्बन्धी लगाने का आशय उपरोक्त पंक्तियों में छिपा हुआ है।

———

वचन १०८

बन्द लगाना

वेदों में प्रार्थना है :—"विश्वानि देव सवितुर दुरितानि परासुव: यद् भद्रम् तन्न आसुव:"

'ऐ ईश्वर जगत के देवता ! हमारे समस्त पापों को धो दे

और हमको वह दे जो अच्छा है।"

इस प्रार्थना में अध्यात्म का आशय छुपा है। यहाँ बुराई से उच्चाटन और भलाई से मोहन का आशय विद्यमान है। हम बुराई नहीं चाहते ! हम भलाई चाहते हैं।

यही कारण है कि हमने आरम्भ में अहिंसा से प्रेम करने पर बल दिया है। यही असली भलाई है। हम इस जगत से पृथक नहीं हैं जो इसकी बुराई की इच्छा करें। स्वयं ईश्वर भी संसार से पृथक नहीं हैं जो हम इसकी बुराई करें। दुनियाँ में जीवों की हानि पहुंचाना वास्तव में अपने आप को और अपने ईश्वर को हानि पहुंचाना है। इसे कौन अच्छा कहेगा ? जो चाहे वह करो किंतु मन, बचन और कर्म से किसी को भी न सताओ, न किसी का दिल दुखाओ और न उस पर अत्याचार करो।

बाहर हमने गुरू को साक्षात् अहिंसा का रूप मान लिया है। गुरू सर्व व्यापक सिद्धाँत है किन्तु जब तक सर्व व्यापक सिद्धाँत को व्यष्टि रूप में स्वीकार न किया जाय तब तक ज्ञान, ध्यान, कर्म कुछ भी नहीं बनता। गंगा अपने वहाब की दृष्टि से सर्व व्यापक हैं किंतु चूँकि हम बद्ध और व्यष्टि रुप लोटे या अंजुलो में उसके जल को लेकर पीते हैं और वह जल अंतर बाहर दोनों प्रकार से हमको बराबर तृप्ति करता है और जीवन का कर्त्तव्य पालन करता हैं। यही दशा प्रकृत की संपूर्ण वस्तुओं की हैं। छोटी सृष्टि का काम छोटी सृष्टि से चलता है। बुद्धि व्यापक है लेकिन हमें जो बुद्धि मिली है उसी से काम लेना पड़ता है। इसी तरह गुरू, शिक्षक और पथ-प्रदर्शक की भी हैसियत है। गुरुआई, शिक्षा और पथ-प्रदर्शन भी व्यापक तत्व हैं। सारा जगत अपने दृश्य से हमको मुख्य मुख्य

प्रकार के विचार प्रदान करता है,लेकिन सीमित होने के कारण हम केवल सीमित दृश्य देखते और सीमित ही दृश्यों से विचारों का आनन्द प्राप्त करते हैं। यह सीमितपना बुरा नहीं हैं बशर्ते कि उसमें अपरमितपने का बड़प्पन और अपरिमितपने का तत्व मौजूद हो। गुरु के स्वरूप को अपनी आँखों के सामने बतौर इष्टपद के रखकर उसके प्रभाव को अपने दिल में लाते हैं।

हर काम की यही दशा है। आंखों से देख कर हम दृश्यों का अक्स और उनके संस्कार की छाप हृदय में बना लेते हैं। फूलों की बाहरी सुगन्ध को लेकर अपने अंन्दर डाल देते हैं। शब्द के सुर, अलाप और किंगरी को कानों से सुनकर अपने अन्दर और बुद्धि और स्मरण शक्ति के अन्तरीय कोष में रख लेते हैं। यही साधन गुरु के दरस परस के साथ किया जाता है। बाहर देखकर उनकी सूरत को भी हम अपने अन्दर उतार लेते हैं और हमारे अन्दर गुरु की शक्ल बन जाती है। संगत का प्रभाव तो होता है। इसे अस्वीकार कौन कर सकता है! खरबूजा को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है। इसी नियम के आधीन हम में वही उच्च और उच्च से उच्च भाव पैदा होते हैं जो गुरू में मौजूद हैं और उनके आते ही फिर हमको उनके साथ एकता हो जाती है। जहाँ यह पैदा हुई फिर काम का बनना आरम्भ हो जाता है।

जिस समय यह दशा होने लगती है उसी समय गुरु बन्द लगाने की शिक्षा प्रारम्भ कर देते हैं और संयम के शिकजे में लाकर दृष्टि को ऊँची बना देते हैं। यही बन्द या बन्दिश उसी प्रकार ऊँची चढ़ने वाली हो जाती है जिस प्रकार से डोर से बंधे हुये पतंग का हाल होता है। वह थोड़ा सा हाथ का

संकेत पाकर नाचने लग जाती है और फुदकती हुई आकाश को ओर चली जाती है।

यह बन्दिश क्या है ? इस संसार में हम अधिकतर आँख, कान और जिभ्या के कारण से बँधे हुए है। दूसरी दो ज्ञानेन्द्रियाँ इतने बंधन की दशा उत्पन्न नहीं करतीं। यह तीन विशेष प्रकार से अधिक बलवान हैं। उनका रुझान बाहर की ओर है। यह तो तुम देखते ही हो। अब हम अपने अन्दर गुरु के भाव लेकर उनकी शिक्षा के अनुसार उन पर बन्द लगा देते हैं और बाहर से उनके रुझान को मोड़कर अन्दर की ओर इन्हें आकर्षित कर देते हैं ताकि ये हर समय बाहर ही की न बनी रहें। अपने अन्दर का खेल भी देखें।

अन्दर क्या है ? जो कुछ है वह हमारे अन्दर ही तो है। बाहर क्या है ? अन्दर का खेल बाहर भी है। उपनिषद का कथन है— पिंडे सो ब्रह्मांडे" "जो पिंड में है, वह ब्रह्माँड में भी है।"

यह विराट जगत अक्सी सूरत में इस छोटे से शरीर में मौजूद है। इसलिये ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म परब्रह्म, सत् पुरुष और राधास्वामी अगर बाहर हैं तो उनका सामान हमारे अन्दर भी तो होना चाहिये वरना फिर पिंड, ब्रह्माँड की समानता ही क्या हुई। इनको गुरु की दृष्टि लेकर उसे अपना बना कर देखना है। गुरू के ख्याल से इन सब को ढक दो और जिस दृष्टि से गुरू इनको देखते हैं, उसी दृष्टि से तुम भी देखो।

"ईशा वाष्यमिद्" सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्"

"जगत में जो कुछ है उसे ईश्वर के विचार से आच्छादित कर दो या ढक दो" और हम कहते हैं जो कुछ तुम्हारे अन्दर बाहर है उसे गुरू ही के ध्यान से ढको ताकि उसको असलियत

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

का तुमको पता मिले।

अब इस ढकने के रहस्य को समझो। हर वस्तु का ध्या . उस समय होता है जब उस वस्तु को तुम अपनी इन्द्रियों की वृत्तियों से ढक देते हो। आँख है और आँख के सामने कुर्सी रक्खी हुई है। तुमने आँख खोली। आँख की वृत्ति धार के रूप में आँख से निकली। कुर्सी को ऊपर से नीचे तक ढक दिया और आंख की वृत्ति जब कुर्सी के रूप की बन गई, जब तुमको कुर्सी की सूरत दिखाई दे गई। जब तक आँख की वृत्ति कुर्सी के रूप की न बनेगी, तब तक कुर्सी का ज्ञान न होगा। इस प्रकार इंद्रियों का ज्ञान होता है। जहाँ जहां वृत्ति नहीं पहुंचती, वहाँ वहां का ज्ञान भी नहीं होता।

इंद्रियों की वृत्ति में फैलकर ढकने का प्राकृतिक स्वभाव है। जैसे पानी नहर की शकल में जारी होकर खेत में जाता है, वैसे ही मन की इन्द्रिय का हाल है, क्योंकि मन भी इन्द्रिय है। ये आश्चयजनक वस्तुयें हैं। इन इन्द्रियों की असलियत को समझना भी सरल काम नहीं है। इनकी वृत्ति सिकुड़ती और फैलती है। यह बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी वस्तु को अपने अन्दर रख लेती हैं। तुम देखो सूरज, चन्द्रमा, तारागण कितने बड़े बड़े लोक है। यह तुम्हारी छोटी सी आँख में समा जाते हैं। आंख फैलकर इनको ढक लेती है और इन्हें अपने अन्दर रख लेती है और फिर आवश्यकता या प्रसन्नता के समय यदि मन चाहे तो अपने अन्दर इनके चिन्हों को बढ़ाकर उन ही जैसा बना लेता है। स्वप्न में प्राय: विशेषकर इसी प्रकार के कृत्य उससे होते हैं। यह इन्द्रियों के ज्ञान की बाबत है। इसी प्रकार मन के अनुमान का भी ज्ञान होता है। वह भी अपनी वृत्तियों द्वारा सबको ढक कर ज्ञान प्राप्त करता है लेकिन यह ध्यान रहे कि इन्द्रिय और मन दोनों ही धोखा

खाने वाली वस्तुयें हैं। यह बहुत धोके में पड़ते हैं। कभी-कभी इनका धोखा बड़ा दुखदाई होता है। तुम हाथ में सीधी लकड़ी लिये हुये हो। पानी में उसे अपने हाथ में लिये हुये डुबा दो और तुम देखोगे कि लकड़ी टेढ़ी दिखाई दे रही है। असल में वह टेढ़ी नहीं है। केवल पानी पड़ने से टेढ़ी दिखाई दे रही है। यह धोखा है। इसी प्रकार इस दुनियां में सैकड़ों प्रकार हो के धोखे इन्द्रियों को होते रहते हैं। मरुस्थल यानी मारवाड़ के रेगिस्तान में पानी के दृश्यों का दिखाई देना भी एक प्रकार का धोखा ही है जिसे तुम मृगतृष्णा का जल कहते हो। सोच समझ कर अध्यात्म के मार्ग में पैर रखना है। यह मार्ग भी भय से खाली नहीं है। इसी विचार से शास्त्रों में इंद्रियज्ञान व अनुमान ज्ञान के साथ शब्द ज्ञान की कैद भी लगाई है जो एक प्रकार की बन्दिश या रोक है। गुरु और आप्त पुरुष की वाणी को शब्द कहते हैं। इसका सहारा भी लेना पड़ता है। बिना इसके सहारे के ज्ञान पूर्ण नहीं होता। गुरु का सहारा लेकर, गुरू की दृष्टि लेकर और गुरू के भाव लेकर जब तुम इस जगत को ढक कर उसका ज्ञान प्राप्त करोगे, तो धोखे से बचोगे तुम में सचाई आयेगी। तुममें संतोष और शान्ति आयेगी और इस तरह बन्द रुपी संयम से तुम उस ज्ञान को पाकर पूर्ण हो लोगे और कहते फिरोगे "पूणम पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते" "वही पूर्ण है, उसके सिवा और कुछ भी पूर्ण नहीं है।"

गुरु धारण करने का संयम पहला है। केन्द्र बनालो ताकि इसके सहारे तुम खड़े हो सको। संसार के थपेड़ों के मारे इधर से उधर बहकते और भटकते न फिरो। अगर इस संयम से काम न लोगे तो उसी प्रकार आवारा गर्द बने रहोगे, जिस से घर के केन्द्र बनाने के बिना तुम्हारी दशा रहती है। केन्द्र

तो तुमको आरम्भ में हर काम का ही बनाना पड़ता है। इसके बिना कभी तुम इस परमित और अपरिमित संसार में अपना काम नहीं कर सकते। इसे अच्छी तरह हृदयांकित करके तब हमारी बात को मानो। बिना सम्बन्ध किये हुए कोई आदमी निस्संबन्ध नहीं हो सकता बिना आसरा लिये हुये कोई आदमी निराश्रय नहीं हो सकता। जब तक प्रारम्भ में बन्द लगाने या संयम से काम न लोगे मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकोगे। यह गुरु धारण करने का रहस्य है। जब तुमने गुरू बना लिया, तुमको गरू दृष्टि प्राप्त होती चलेगी और उसके आसरे जब काम करने लगोगे तब खटके और सांसारिक धोखे से बचकर चलोगे और उसी दृष्टि से सबको ढकने पर इस संसार का सच्चा ज्ञान होने लगेगा।

किन्तु जैसा कि हमने पहले कह दिया है गुरू धारण करने के पश्चात् गुरू तुमको बन्द लगाने की शिक्षा देंगे और बन्द लगाकर स्वतन्त्रता और विस्तार के मैदान में चलने की शक्ति आती जायेगी।

वचन १०६

तीन शब्द -

गुरू नानक साहब की वाणी है:

तीन बन्द लगाय कर, सुन अनहद टकोर।
नानक सुन्न समाध में, नहिं सांझ नहिं भोर॥

इस शब्द से वाणी का समर्थन होता है :

(१) चश्म बंदो गोशबंदो लब बबंद, गर न बीनी सिरें इक बरमी बबद। अर्थ:—आँख कान और लब को अपने बन्दकर, फिर न राजे हक से होगा बेखबर।

यह तीन बंद क्या हैं ? इनको कुछ तो पहले बचनों में बता दिया गया है । आँख, कान और जिभ्या को बाहर की ओर से रोक रखना तीन बन्द हैं । चौथा बन्द तुम्हारे मन में है और वह गुरू के महत्व का ख्याल है । उसी बन्द के सहारे इन तीनों बन्दों का काम चलता है ।

जीवन का आधार इन्हीं तीनों इन्द्रियों पर अधिकतर है । यह कान, आँख और जिभ्या हैं । इस शारीरिक प्रबन्ध का आधार अधिकतर इन्हीं के सहारे है और इन्हीं की गति और ठहराव पर इनका व्यवहार होता है । अगर यह न हों तो यह व्यवस्था नष्ट हो जायेगी या कमजोर बनकर केवल थोड़े ही दिनों तक काम कर सकेगी ।

प्राकृतिक व्यवस्था में तीन मद्दे हैं–देह, मन और आत्मा और इन तीनों की व्याख्या यहाँ विशेष रूप से करदी जाती है ताकि आगे चलकर राधास्वामी मत की शिक्षा के समझने में सुगमता हो ।

[१] **देह**—स्थूल खोल अर्थात् आकाश, वायु, जल, और मिट्टी के स्थूल हिस्सों से बना हुआ खोल है जो प्रकृति की समस्त जड़ शक्तियों को अपने साथ रखता है और जिसमें दस बाहरी ज्ञान और कर्म इन्द्रियाँ शामिल हैं और विशेषकर अपनी विशेषताओं की दृष्टि से किसी अन्य शक्ति के आधीन विभिन्न कर्म करती रहती हैं । यह स्थूल शरीर कहलाता है और जाग्रत का व्यौहार करता है ।

[२] **मन**—मानसिक खोल अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि जल और मिट्टी के सूक्ष्म हिस्सों या तत्वों से बना हुआ खोल जो प्रकृति की समझ बूझ रखने वाली शक्तियों को अपने

साथ रखता है जिसमें चार अन्तरीय इन्द्रियाँ—चित्त, मन बुद्धि और अहंकार शामिल हैं और जो अपनी विशेषताओं की दृष्टि से किसी और ही शक्ति के आधीन विभिन्न कर्म करती हैं। चित्त मन के मण्डल में वह इन्द्रिय है जिससे विचार की धार में गति आती रहती है। मन तवज्जह (आत्मिक धार) की वह यकसुई धार है जिसके आधीन विचार पैदा हो होकर अपने कारोबार के साथ मिले जुले रहते हैं। बुद्धि समझ बूझ की वह इन्द्रिय है जो हर वस्तु का निर्णय करती है और मन के साथ रहती हुई हर बात के भेद को समझती है। अहंकार वह है जो विचित्र ढंग में चित्त के चितपना, मन के संकल्प विकल्प और बुद्धि के कारोबार को यथोचित सहायता, पुष्टि और शक्ति देता रहता है। इन चारों के संगठन को मन का नाम दिया जाता है और वही सूक्ष्म शरीर है जो स्वप्न का व्यौहार करता है।

[३] आत्मा—यानी सुरत वह है जो ऊपर के दो खोलों को आप स्थित रह कर गतिमान बनाती और जीवन प्रदान करती है, जिसके बिना कि वह बिलकुल निर्थक रहते। यह इनका कारण है और इसकी समझ उसके कारण शरीर यानी सुषुप्ति की अवस्था पर ध्यान देने से आती है।

इन तीनों की असलियत जब तक अच्छी तरह न समझ ली जाये तब तक अभ्यास या तीन बन्द लगाने में सहूलियत नहीं होती।

उदाहरण के रूप में यों समझो। एक बढ़ई है, एक बढ़ई का बसूला है और एक बढ़ई के काम करने का लकड़ी का तख्ता है। काम लकड़ी के तख्ते पर किया जाता है, मगर यह काम बसूला करता है और यह काम बिलकुल बढ़ई के

आधीन है। आत्मा बढ़ई है, मन उसका बसूला और देह है उसकी लकड़ी का तख्ता है।

मन की उपमा बसूला से इस कारण से दी गयी है कि वह भी औजार मात्र है। यदि बसूला न हो तो बढ़ई कोई काम नहीं कर सकता और अगर तख्ता न हो तो काम किस पर किया जाये। यह तख्ता देह है। जिस तरह हाथ में बसूला लेकर बढ़ई तख्ते को ठोंकता है, गढ़ता है और विशेष प्रकार के रूप में लाता रहता है, ठीक इसी तरह यह आत्मा मन के द्वारा देह को गढ़ता रहता है। जो विचार मन में आया तुरन्त उसका परिणाम शरीर पर हुआ। काम, क्रोध लोभ, मोह, अहंकार वह संकल्प की धार है, जिनकी हरकत या क्रिया इस स्थल शरीर पर होती रहती है और इन्हीं के कारण शरीर के रंग रूप निकलते हैं। काम के समय शरीर की सनसनाहट और तरह की होती है। क्रोध के समय वह और ही तमाशा दिखाती है। जिस तरह बढ़ई की चोट और खराद आदि से लकड़ी का तख्ता विशेष रूप का बन जाता है, वैसे ही इन पांचों में से हर एक की क्रिया का प्रभाव शरीर पर पृथक-पृथक होता है। मनुष्य का शारीरिक जीवन वैसा ही बन जाता है। कोई हम में से कामी है, कोई क्रोधी है, कोई लालची है, कोई मोही है और कोई अहंकारी है, यह समस्त गुण हममें विशेष प्रकार के संकल्प के अभ्यास से आते रहते हैं और हमको वैसा ही बना देते हैं।

यह तीन मण्डल तीन पद कहलाते हैं। देह, मन और आत्मा और सब आदमी इन्हीं का कारोबार करते रहते हैं। इनके अलावा एक चौथा पद भी है जो इनका भंडार कहलाता है। इन तीनों की मानवीय व्यवस्था अधिकतर उन तीनों जिश्या, कान और आँख पर निर्भर है। यह मन के खास

औजार हैं। शेष साधारण हैं।

हम आँख से दृश्य देखकर बाह्य जगत से सम्बन्ध पैदा करते हैं और इनके प्रतिबिम्ब को मन के अन्दर रख कर कल्पित व्यवहार के पैदा करने वाले बनते हैं। हम कानों से बाहर के शब्द सुन कर मन को उनके प्रभाव से प्रभावित करते रहते हैं और बाहर भीतर उनका व्यौहार हमसे प्रगट होता है। हम जिभ्या से बोलकर दूसरों पर प्रभाव डालते हैं और उसी प्रभाव को हमने अन्दर लिये उसी की अधेड़ बुन में लग जाते हैं और अन्दर ही अन्दर अपनी कही हुई बात का लौट फेर करते रहते हैं। यह साधारण सी बातें हैं जो हर व्यक्ति के दैनिक जीवन से सम्बन्धित हैं। यदि देखने सुनने और बोलने का कार्य न किया जाये तो फिर जीवन क्या होगा! यही दुनियाँ के फंसाने के जाल हैं। हम देखकर बोलकर और सुनकर फंसते हैं और जीवन भर बराबर फंसते रहते हैं। यह हर आदमी जानता है। राधास्वामी मत उपदेश देता है कि यदि तीन इन्द्रियाँ तुमको बन्धन में डालने के जाल हैं तो इन पर बन्द लगा देने से यह मुक्ति के भी साधन हो सकती हैं। बन्धन और मुक्ति दोनों ही विरोधी अवस्थायें मन से सम्बन्धित हैं। यह तीनों इन्द्रियाँ इसके औजार हैं।

पहले बाहरी बन्द लगाओ और वह इस तरह कि गुरू की सेवा में जाकर गुरू को देखो, गुरू के बचन को सुनो और गुरू के गुन गाओ, ताकि बाह्य दृश्यों की ओर से चित्त हटने लगे। इससे अभिप्राय यह है कि गुरू के साथ एकता पैदा हो। एकता पैदा करने से तुम उनकी शिक्षा के आशय की सरलता से ग्रहण करते चलोगे अन्यथा सुनी अनसुनी, देखी अनदेखी, बोली अनबोली बराबर हो जायेगी! गुरू के साथ बिना एकता किये तुम्हारा अहंकार बना रहेगा, दूर न होगा। जब

तक तुम इसे इस तरह आधीन करके काम में न लोगे तब तक मन मुखता का दोष लगा रहेगा। इस कारण गुरू मुखता पर इतना बल दिया जाता है। जब इस बाहरी अभ्यास की आदत पड़ गई तो फिर अंतरीय बन्द लगाने से सरलता होगी।

यह आंतरिक बन्द यह हैं-आँख, कान और जिभ्या के बाहरी रुख (चेष्टा को बदल दो। उनको अन्दर की ओर आकर्षित कर लो, लेकिन वह यों आसानी से अन्दर की ओर आकर्षित न होंगी। वे तो अनेक वर्षों से बाहर की ओर आकर्षित हैं। आदत का बदलना सुगम कार्य नही है। मन बाहर दौड़ने का अभ्यास हो गया है और उसकी बाहर मुखी होने की आदत इन्हीं तीनों इन्द्रियों की वजह से हुई है। पहले इनको बन्दिश में लाओ अर्थात इन पर रोक लगाओ। तब मन अन्तर मुखी बनेगा। मन को बाहर रस मिलता है और वह इस बाहर के रस का अनुरागी बना हुआ है। कोई ऐसा उपाय हो कि यही रस उसको अंतर में भी मिलने लगे, तब वह उधर से मुड़कर इधर की ओर जुड़ेगा। लड़का एक खिलौने पर मचला हुआ है। उसे नहीं छोड़ता, लेकिन अगर उसे कोई अच्छा खिलौना दे दिया जाये तो इसे हाथ में लेकर वह उसे छोड़ देगा। यह मन भी मचलने वाला लड़का है। बाहर की अपेक्षा अन्दर में रस अधिक है लेकिन इसे थोड़े ही लोग समझते हैं यद्यपि यह दिन प्रति दिन का अनुभव है। अनेक व्यक्ति बाहर से उकता कर नित्य अन्तर की ओर जाता है और वहाँ अधिक सुख प्रतीत करता है। जाग्रत के व्यौहार से स्वप्न में अधिक आराम है और उससे भी अधिक आराम सुषुप्ति में है, क्योंकि वह अन्तरीय अवस्था की भी अन्तरीय अवस्था है। लेकिन समझ के न होने से हर मनुष्य जाग्रत ही का महत्व देता रहता है।

जो बाहर है वह अन्दर भी है। बाहर स्थूल है अन्दर सूक्ष्म है। स्थूल से सूक्ष्म वस्तु टिकाऊ और वैभवशाली होती है, मगर हम क्या करें बाहर के ब्यौहार के अभ्यास से हम अन्तर की ओर तो चेष्टा भी नहीं करते।

आंख, कान और जिभ्या के सब सामान हमारे अन्दर भरे पड़े हैं। जिस समय अभ्यासी गुरू से दीक्षा लेकर साधन और अभ्यास करने लगेगा, वह अपने अन्दर दृश्य देखेगा। अपने अन्दर अनहद शब्द के सुरीले राग सुनेगा और अपने ही अन्दर नाम का स्मरण करेगा। साधन के प्रारम्भ करते ही धीरे-धीरे अंतरीय अनुभव से अभ्यासी स्वयं अन्तर मुखी बनने लगेगा। हाँ, जब तक अभ्यास का रस न मिलेगा, तब तक चाहे वह जो कुछ कहा करे। रस के पैदा होते ही उसमें परिवर्तन आने लगेगा।

आनन्द तो मिलता ही है। इस जगत की उत्पत्ति ही आनन्द से होती है। उपनिषद् में वर्णन है :—

कोमेवान्यात् कः परान्यात् यदीश प्रकास आनन्दोनास्यात

"यहां न कोई जीवित रह सकता था न हरकत कर सकता था, यदि सर्व व्यापक आनन्द आकाश में फैला हुआ न होता।" दूसरा कथन यह है। द्यौ खल विभक्ति भूतानि जायते "इसी आनन्द से हर वस्तु की उत्पत्ति हुई है" तीसरा कथन यह है :—

"वह सत पुरुष अपने आपको आनन्द में ही प्रगट करता है।"

यह आनन्द यदि तुम्हारे बाहर है तो तुम्हारे अन्दर भी है और यह बाहर की अपेक्षा तुम्हारे अन्दर सौगुना हजार गुना बल्कि लाख गुना अधिक है।

यह बता दिया गया है कि मानव देह पिंडाण्ड है और

ब्रह्माण्ड की सब विशेषताये अपने अन्दर रखता है। "पिंडे सो ब्रह्मांडे" यदि यह ठीक है तो रचना की समस्त शक्तियों का सुख क्या तुम्हारे अन्दर न होगा। पित्रों का सुख, देवताओं का सुख, इन्द्र का सुख, प्रजापति का सुख और ब्रह्मा का सुख भी तो तुम्हारे अन्दर ही होगा। यदि यह तुम्हारे अन्दर नहीं है, तो फिर समझ लो कि यह कहीं बाहर भी नहीं है। यदि यह तुम्हारे अन्दर न होता तो सम्भव नहीं था कि तुम उसे अनुभव भी कर सकते। अन्तर में है तब ही तो उसका अनुभव होता है। बहिर्मुखी मत मतांतर उपनिषद और वेदों को अपने धर्म का केन्द्र मानते हुए भी इस रहस्य पर तनिक भी प्रकाश नहीं डालते। राधास्वामी मत इनके प्रतिकूल प्रत्येक वस्तु को मनुष्य के अन्दर बताता है और खुले और स्पष्ट शब्दों में उपनिषद और वेद के वाक्यों की व्याख्या करता है। यह स्पष्टरूप से कहता हैं कि ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म, परब्रह्म, सत्यम् आदि तक के स्थान तुम्हारे अन्दर हैं। यदि यह अन्दर नहीं तो फिर उपनिषदों का यह कहना है जो पिंड में है वह ब्रह्मांड में है बिलकुल गलत और झूठ सिद्ध होगा। गायत्री के प्राणायाम मंत्र ओ३म् भूः, ओ३म् भुवः, ओ३म् स्वः, ओ३म् महः, ओ३म् जनः ओ३म् तपः और ओ३म् सत्यम् का भी यही आशय है कि जो कुछ है वह मनुष्य के अन्दर ही है और अन्दर ही उसकी खोज करना चाहिये। यदि मिलेगा तो वह अन्दर ही मिलेगा, बाहर जिसका जी चाहे भटका करे। जिसको कभी मिला है, मिलता है और मिलेगा तो अन्तर ही में मिलेगा। बाहर कभी न मिलेगा।

बन्द लगाने से इस तरह अन्दर में रस आवेगा। शक्ति के नष्ट करने में शक्ति नहीं है किन्तु शक्ति आत्मसंयम, अपने ऊपर

अधिकार और चित्त की वृतियों के निरोध में है। चित्त वृतिय के निरोध के अभ्यास से हम शक्तिशाली होते हैं। यही योग का सिद्धान्त है। चाहे वह गोरखनाथ का हठयोग हो या पातंजलि का राजयोग हो या व्यास और कपिल का ज्ञानयोग हो। पहलवान बन्द लगाने की शिक्षा के अभ्यास से शरीर का बली होता है। बुद्धि पर बन्द लगाने की शिक्षा के अभ्यास से बुद्धि का पहलवान बनता है। और भी इसी प्रकार समझलो।

इस बंदिश से अभिप्राय यह है कि मन बाहर से मुड़कर अंतर में जुड़े। बाहर जो चाहता है दिखाई देता है। वह मन ही के प्रकाश के कारण है। अंतर भी जो चाँदना होगा वह मन ही के कारण होगा। मन एक मशाल है। जब उसकी चेष्टा नीचे की ओर है तो नीचे की ओर प्रकाश दिखाई देता है। उसकी चेष्टा ऊंचे की ओर फेर दो ऊँचे में प्रकाश हो जायेगा। इन इन्द्रियों के तीन बन्दों का प्रयोजन मन का फेर देना है।

वचन ११०

बन्द लगाने का प्रयोजन

इस बन्द लगाने के दो प्रयोजन हैं। एक तो मानसिक शक्ति

इस बन्द लगाने के दो प्रयोजन हैं : एक तो मानसिक शक्ति का विशेष केन्द्र पर स्थिर करना। इससे मनकी शक्त एकाग्र होगी। दूसरे इसी मन की एकाग्रित शक्ति की सहायता से इसे और ऊँचे केन्द्रों की ओर गतिमान करके उसको आकर्षित करना। साधन से यह दो काम लिये जाते हैं। जब तक मन केन्द्र बनाकर एकाग्र न होगा उसमें एकाग्रता की शक्ति न आये गी। जब तक वह शक्ति से बंचित रहेगा तब तक आगे बढ़ने के साहस से बंचित रहेगा। हम जो काम दुनियाँ में

करते हैं, इसी नियम के आधीन करते हैं। पहले अपनी शक्ति को बढ़ा लेते हैं। जब वह एकाग्रित हो जाती है, तब उसको और आगे की ओर ढकेलते हैं और दूसरा केन्द्र बनाते हैं।

लेकिन अभी तक यह बात नहीं बताई गई कि यह केन्द्र क्या है और इनसे क्या अभिप्राय है ? सन्तों की शिक्षा के अनुसार रचना की व्यवस्था केवल तीन भागों में बंटी है। एक को दयाल देश कहते हैं जो शुद्ध अध्यात्मिक मंडल है दूसरा ब्रह्मांड जो ब्रह्माण्डीय मन का मंडल है। इसका नाम कालदेश है। तीसरा माया देश जो बिल्कुल स्थूल (भौतिक) है। दयाल देश में शुद्ध चेतन्य ही चेतन्य है। वहां सिवाय चेतन्य के और कुछ नहीं है। यह अध्यात्म का केन्द्र है जहाँ शुद्ध आत्मा वास करती है। काल देश में शुद्ध चेतन्य और सूक्ष्म माया की मिलौनी है। यह ब्रह्माँड है।

माया देश में शुद्ध चेतन्य और स्थूल माया की मिलौनी है। यहाँ चेतन्य बिल्कुल माया के पर्दों में दबा हुआ है।

हमारे शरीर में भी यह तीनों मण्डल अथवा उन असली मंडलों के असली नक्शे मौजूद हैं। गले तक तो स्थूल माया की हद है। तीसरे तिल से परे ब्रह्मांड की हद प्रारम्भ हो जाती है। मस्तिष्क (माथा) के सिरे तक उसको हद है। उसके बाद दयाल देश यानी शुद्ध अध्यात्म के कारोबार का मंडल आता है। इन तीनों मंडलों में से हर एक छः छः चक्रों या भागों में बंटा है पहले इस शरीर के स्थूल माया के भागों का वर्णन किया जाता है वह यह है :—

प्रथम-गुदा चक्र—जो स्थूल पृथ्वी का स्थान है। इसके धनी का नाम गणेश है। धनी उस देवता को कहते हैं, जिसके

आधीन उसका कारोबार है और जो उसे नियम में चलाता है

दूसरा इन्द्रिय चक्र - जो स्थूल जल का स्थान है। इसके धनी का नाम ब्रह्मा है, जिसके आधीन इस स्थान का कारोबार है और जो जल से जीव जन्तुओं आदि सबकी उत्पत्ति का अधिष्ठाता और आधार बना हुआ सबको नियम में चलाता है।

तीसरा नाभी—चक्र—जो स्थूल अग्नि का स्थान है। इसके धनी का नाम विष्णु है। वह स्थूल रचना का मध्यस्थ बना हुआ सबकी सँभाल और पालन पोषण करता रहता है। सँभाल और पालन पोषण के कारोबार को नियम में चलाना उसी का काम है।

चौथा-हृदय चक्र-जो स्थूल वायु का स्थान है। उसके धनी का नाम शिव है, जो सब का सुखाने वाला संहार कर्ता पुरुष है। इस स्थूल रचना के नाश करने का काम इसी के जिम्मे है।

पांचवाँ कंठ चक्र—जो स्थूल आकाश का स्थान है, इसके धनी का नाम आद्या, आदि माया और आदि वासना शक्ति है। यह जगत वासना ही से उत्पन्न होता है और यह वासना कंठ में रहती है।

यह छः स्थूल देह के निचले स्थानों के चक्र हैं। जिस तरह यह इस शरीर में है इसी तरह यह ब्रह्मांड में भी हैं। इस मिले हुए निचले स्थानों का धनी पिंडी आत्मा है, जिसकी बैठक तीसरे तिल में है। इससे सहस दल मिला हुआ है। शारीरिक व्यवस्था के निचले मंडलों का कारोबार इसी के आधीन है और यही बहुत से सम्प्रदायों में आत्मा समझा जाता है।

आत्मा तो वह है। उसके आत्मा होने में कोई सन्देह नहीं है लेकिन यह वह आत्मा नहीं है जो सर्व व्यापक है।

इन षट चक्रों में से नीचे के चार चक्रों के कार्य तो थोड़े बहुत सब पर प्रगट होते हैं और उनकी जानकारी रहती है। ऊपर के दो चक्रों की समझ कमतर हुआ करती हैं। इसी तरह निचली व्यवस्था के मंडलों के ऊपर जो चक्र काल देश या दयाल देश हैं और जिनके असली स्थान हमारे सर और मस्तिष्क में हैं उनका तो पता भी नहीं हैं। हाँ प्राचीन संस्कृत के ग्रन्थों में ब्रह्मांड के चक्रों के कुल नाम और इनके ऊपर सत्यम् यानी सत लोक का वर्णन आता है।

यह सब अक्रिय अवस्था में पड़े हुये हैं। इनको गति में लाना सुरत शब्द योग अभ्यास का ध्येय है। जब सुरत इन चक्रों पर अपनी वृति जमाती हुई बैठेगी और इनको गर्मी पहुचेगी, उस समय यह खिल जायेंगे और अध्यात्म की उन्नति प्रतीत होगी।

यह बन्द लगाने का प्रयोजन है।

वचन १११

काल देश और दयाल देश

ब्रह्मांड नाम है ब्रह्म के अंडे का। ब्रह्म का अंडा यह सृष्टि है। जो इसमें है वही पिंड में है। जो पिंड में है वही इसमें भी है। पिंड के षट चक्रों के अनुमान से ब्रह्मांड के चक्रों का अनुमान किया जाता है, क्योंकि जिस तरह बेटे का रूप देखने से उसके बाप का अनुमान होता है, उसी प्रकार पिंड की हालत से ब्रह्मांड का अनुमान लगाया जा सकता है। जिस तरह बेटा बाप का अक्स है उसी पिंड भी ब्रह्मांड का अक्स है। एक असली

है दूसरा उसकी नकल है। सन्तों ने उसको सही घटना व तरह पर वर्णन किया है जिसके हाल का पता चढ़ाई करने वालों को ज्ञात होता है। जो यहाँ है वही वहाँ है। अन्तर केवल अपेक्षा की दृष्टि से बढ़ाई और छुटाई का है। उसमें भी पांच चक्र सृष्टि की व्यवस्था की प्राकृतिक शक्तियों के चक्र हैं और छटा चक्र पर ब्रह्म पद है, जो ब्रह्माडी आत्मा है। पिंडी आत्मा और उसका कारोबार जैसे पिंड में व्यापक है, वैसे ही ब्रह्मांडी आत्मा ब्रह्मांड में व्यापक है लेकिन इसकी तरह उसका भी स्थान है वह भी विशेष रूप से एक स्थानी है और सामान्य रूप से सर्व स्थानी है क्योंकि पिंड की असल वही है।

जैसे पिंड में पिंडी मन काम करता है, वैसे ही ब्रह्मांड में ब्रह्माँडी मन का कारोबार है। पिंडी मन हमारे शरीर का मन है और ब्रह्माँडी मन ओ३म् या प्रणव है।

पिंडी आत्मा तो इस शरीर और उसके षट चक्रों का धनी है। यह दोनों एक जैसे हैं। हाँ, एक सर्वज्ञ है, दूसरा अल्पज्ञ है। यह इनमें अन्तर है। जिस तरह पिंड के षटचक्रों के अस्तित्व का आधार ब्रह्माँडी आत्मा या परब्रह्म है। जिस तरह हमारा पिंडी आत्मा हमारे शरीर से न्यारा है, ऐसे ही यह परब्रह्म पद ब्रह्माँड से न्यारा है। न्यारा का मतलब यह है कि उसका स्थान पाँच चक्रों से ऊपर और उनसे अलग है।

जो दशा कि ब्रह्माँड की है वही दयाल देश की भी है, क्योंकि वही वास्तव में असल है। उसकी नकल ब्रह्माँड है और ब्रह्माँड की नकल यह पिंड है। इनकी अधिक व्याख्या दूसरी जगह की जायगी।

— - —

बचन ११२

तीन सिद्धाँन्तों की विशेष व्याख्या

आत्मा, मन और माद्दा-(पंच भौतिक पदार्थ) यह तीन सृष्टि के सिद्धान्त हैं। आत्मा सतपना, चितपना और आनन्द पना है। मन में सतपना और चितपना है और आत्मा के मेल से उसमें आनन्द पने का अनुमान होता है। भौतिक पदार्थ (माद्दा) में सतपना है। मन के मेल से इसमें चितपना और आनन्द पने का अनुमान होता है। यह उनमें अन्तर है।

आत्मा अपने शुद्ध मंडल में बिलकुल वास्तविक अवस्था में है। ब्रह्माँड में उसका खेल केवल ब्रह्माँडी मन के साथ है और पिंड में वही आत्मा मन और माया के साथ खेलते हैं।

आत्मा के स्थान में स्वतन्त्रता है, मन के स्थान में स्वतन्त्रता के साथ इनका खेल है और पिंड के स्थान में खेल के साथ उसमें बन्धन है।

आदि में स्वतन्त्रता थी। खेल और बन्धन बीच की दशायें हैं। अन्त में इनके समाप्त होने पर भी वही स्वतन्त्रता को स्वतन्त्रता है मगर शर्त यह है कि इन (बीच को दशाओं) के कारोबार को हालत और उनका रूप अच्छी तरह समझ में आ जाये।

असली अवस्था में करना धरना कुछ भी नहीं हैं। यह विशेषतायें केवल पिंड के साथ हैं, क्योंकि पिंड ही असल में कर्म का स्थल, कर्म की योनि और कर्म का क्षेत्र है। ब्रह्माँड में कल्पना का व्यवहार है। इनकी समझ का आना और असली अवस्था का अनुभव हो जाना ज्ञान है। यह तीन विवरण हैं

और उनके ज्ञान से फिर उसी ज्ञान स्वरूप में स्थापित हो जा ज्ञान का प्रयोजन या ज्ञान का आदर्श है।

कारण के जगत में जहाँ कारण और कार्य का नियम प्रभाव डालता रहता है, वहाँ ही तक कर्म, कर्म के फल और कर्म और कर्म के फल का जानना और समझना निर्भर करता है। उनके जान लेने से फिर वह प्रभाव नहीं डालते क्योंकि जहाँ उनके और अपने रूप की समझ आ गई फिर बन्धन की जंजीर टूट जाती है और कर्म में फल देने की शक्ति नहीं रहती, क्योंकि वह इस तरह नष्ट हो जाता है कि फिर बंधन का कारण नहीं बन सकता और आत्मा स्वतन्त्र की स्वतन्त्र रहता है यहाँ तक कि पिंडी आत्मा भी इस शरीर में रहता हुआ उनको फूंक कर उड़ा देता है। फूंक कर उड़ा देने का नाम निर्वाण है और यही मुक्ति है।

बचन ११३

कर्म क्षेत्र, फल क्षेत्र और मुक्ति क्षेत्र

यह संसार कर्म क्षेत्र है जिसका काम काज जाग्रत अवस्था में हुआ करता है। उसका फल नर्क और स्वर्ग में मिलता है जो फल क्षेत्र है। इसका काम काज स्वप्नावस्था में होता है जहाँ केवल पिंडी आत्मा मन के साथ रहता है। मुक्ति का धाम इन दोनों के परे है। जहाँ न कर्म है और न कर्म के फल से सम्बन्ध है। इसका सम्बन्ध सुषुप्ति में होता है जहाँ केवल आत्मा ही आत्मा है। यह बात पिंड की दृष्टि से उपमा के रूप में दिखाई गई है जिसकी क्रिया प्रति दिन के जीवन में हुआ करती है। यदि इसी को मनुष्य अच्छी तरह समझ ले,

तो वह कर्म, कर्म के बन्धन और कर्म से मुक्ति के रहस्य को प्राप्त कर लेगा। जाग्रत में कर्म, स्वप्न में कर्म के फल और सुषुप्ति में जीव को कर्म के फल से मुक्ति रहती है। यह इतनी सरल बात है कि थोड़ा सा ध्यान देने पर समझ में आ जाती

इन तीनों अवस्थाओं में जीव का सदा पिंड में व्यवहार होता रहता है, जहाँ का जीवन सीमित है, क्योंकि जीव स्वयं ही सीमित है। सीमित ही जीव के बन्धन और मुक्ति को भी इस दृष्टि से सीमित ही समझना चाहिये।

जाग्रत सीमित कर्मों का, स्वप्न सीमित कर्मों के फल से मुक्ति का मंडल है। दिन के चौबीस घंटे में यह बराबर हुआ करते हैं और इन ही में बन्धन और मुक्ति के रहस्य की समझ की जड़ है।

लेकिन जीव सीमित होता हुआ चूँकि असीमित ब्रह्म में रह कर व्यौहार करता है, इसलिये कर्म, कर्म के फल, भोग और कर्म की मुक्ति का सिलसिला बराबर बना रहता है। इसी का नाम जन्म मरण है। जन्म मरण अवस्था के परिवर्तन को कहते हैं। जागना जन्मना है, सोना मरना है और जागने सोने की हालतों से छुटकारा पाना मुक्ति है।

यह ऐसा क्यों है ? इस पर बिना ध्यान दिये हुए प्रश्न का पूर्ण रूपेण तथा संतोषजनक उत्तर नहीं मिल सकता।

कारण यह है कि ब्रह्म में स्वयं जागने, सोने और गहरी नींद में लय होने की अवस्थायें मौजूद हैं। ब्रह्म जब जगत का व्यौहार करता है, तब वह जागता है। ब्रह्म जब जगत के व्यौहार को समेट लेता है, तब वह सोता है और जब ब्रह्म इन दोनों व्यौहारों का त्याग करके अपने रूप में लय हो जाता है, तब वह हालत उसी की सुषुप्ति कहलाती है। यह तीनों ही ब्रह्म में मौजूद हैं और इनका नाम साधारण शब्दों में सृष्टि,

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

स्थिति और प्रलय है। ब्रह्म से पैदा होने के कारण जीव उनके प्रतिबिम्ब प्रभाव मौजूद रहते हैं। इसी कारण सीमित रूप से इन्हीं सृष्टि, स्थिति और प्रलय के आधीन जीता स्थित होता और लय होता रहता है। जो उसमें है वही इस में भी है। केवल सीमित और असीमितपनें का अन्तर है। यह उसका व्यौहार ब्रह्म के जाग्रत के दिन में बराबर होता रहता है। और वह नित्य प्रति के जीवन में प्रति दिन मरता जन्मता रहता ही है। जब ब्रह्म के स्वप्न की रात्रि आती है तब वह उसमें सोता है और ब्रह्म के जाग्रत और स्वप्न के लय हो जाने पर यह फिर ब्रह्म में लीन होकर उसी में मिला जुला रहता है। यह उसकी मुक्ति वहुत दिनों की मुक्ति कहलातीहै

जिस तरह जीव की आयु सौ वर्ष की है. वैसे ही ब्रह्मा की उम्र भी सौ वर्ष की है। जिस तरह जीव के हर वर्ष में में ३६०$\frac{1}{5}$ दिन होते हैं। वैसे ही ब्रह्मा के वर्ष के भी ३६०$\frac{1}{3}$ दिन होते हैं। इन बातों का हिसाब शास्त्रों ने बड़ी सुन्दरता और व्याख्या के साथ किया है। हमको इनके विवरण में पड़ने की आवश्यकता नहीं है अन्यथा यह विषय बहुत लम्बा चौड़ा हो जायगा। अभिप्राय केवल मिलान की दशा के समझ लेने से है।

इस ब्रह्म के तीन रूप हैं। यह कभी न समझो कि यह रूप वाला नहीं हैं। अरूप या निराकार इसको सूक्ष्मता की दृष्टि से कहा गया है। यह यह ब्रह्मांड ही उसका शरीर है जिसमें हम सब उसी तरह बसते, मरते और खपते हैं, जिस तरह हमारे शरीर के जीव जन्तुओं की दशा हुआ करती है। यह भी हमारे अन्दर जन्मते, मरते, और लय होते रहते हैं। यह उसका साकार रूप है। जब वह इस रूप का अभिमानी होत है तो उसका नाम विराट कहलाता है जो हजारों सर वाला

हजारों आँखों वाला आदि आदि है। यह समस्त गुण उसकी ब्रह्म जाग्रत अवस्था के हैं।

शरीर से (हमारी तरह) व्योहार करता हुआ और शरीर का अभिमानी बना हुआ वह विराट है। जब वह इस जाग्रत से उठकर स्वप्न की अवस्था अर्थात ब्रह्म निद्रा का अभिमानी होता है, तब उसका नाम अव्याकृत हो जाता है। स्वप्न का काम तो वह करता है किन्तु विकारी नहीं होता। और जब वही ब्रह्म जागृत और स्वप्न दोनों हालतों को छोड़ कर गहरी समाधी में जला जाता है, तब वही अवस्था ब्रह्म सुषुप्ति कहलाती है। इस ब्रह्म सुषुप्ति के अभिमानी होने की वजह से उसका नाम हिरण्य गर्भ अर्थात् सोने का अंडा कहलाता है। इसके इन तीनों व्योहारों के नाम और रूप दोनों हैं।

ब्रह्म की तीन अवस्थाओं का वर्णन कर दिया गया है। अब फिर जीव की ओर ध्यान देते हैं। जीव जिस प्रकार प्रतिदिन न्मा और मार करता है, उसी प्रकार शरीर के बिगड़ जाने ा सौ वर्ष के बाद उसकी मृत्यु आती है जो और कुछ नहीं हैं वल बड़े स्वप्न की दशा है। इस बड़े स्वप्न में वह नर्क और वर्ग में पड़ा हुआ पाप और पुन्य के स्वप्न को देखता रहता । इस बड़े स्वप्न के समाप्त होने पर वह फिर गहरी नींद

— किसी किसी ने हिरण्य गर्भ को स्वप्न का और अव्याकृ को सुषुप्ति का अभिमानी बताया है। हम अपने तौर पर अपनी उपज से इन नामों को बदल देते हैं। शब्दों पर पैर जाने की आवश्यकता नहीं है। शब्द तो शब्द ही है। केवल शब्दों के तत्व और असल अर्थ को समज लेना चाहिये। व्यर्थ श ब्दिक झगड़ों में पड़ने से असली अभिप्राय मारा जाता है।

में चला जाता है । जो जीव की मुक्ति कहलाती है । जब मुक्ति जाती रही तब फिर बहुत दिनों के बाद जपने कर्मानुसार पैदा होता है । और यह क्रम यों ही बराबर जारी रहता है जब तक ब्रह्म रात्रि नहीं आती । विराट के जाग्रत में जीव मरता और जन्मता रहता है । अव्याकृत के स्वप्न में भी उसमें उसी तरह परिवर्तन होते रहते हैं जैसे हममें स्वप्नावस्था में होते हैं । यह बड़ा स्वर्ग नर्क है । यह ब्रह्मा की दृष्टि से जीव का ब्रह्म स्वर्ग और ब्रह्म नर्क कहा जा सकता है यद्यपि यह शब्द हमारे ही अपने गढ़े हुए हैं और हमने अपने आशय के प्रगट करने के लिये उनको बना लिया है । अव्याकृत का स्वप्न जीवों का बड़ा कर्म फल का क्षेत्र है ।

फिर जब इस ब्रह्म स्वप्न का अन्त हो जाता है, तब जीव ब्रह्म में लय होकर ब्रह्म की ब्रह्म सुषुप्ति अर्थात हिरण्य गर्भ की अवस्था के आनन्द में मग्न और डूब जाता है । यह जीव की दृष्टि से ब्रह्म मुक्ति है और यह बहुत बड़ी मुक्ति है । यह ब्रह्म मुक्ति भी हमारा गढ़ा हुआ शब्द है । यह हिरण्य गर्भ बहुत बड़ी मुक्ति का मुक्ति क्षेत्र है ।

लेकिन चूँकि ब्रह्म का कारोबार काल के चक्र में है, इसलिये वह भी जागता, सोता और अपने में लीन होता रहता है । जब उसका इस सुषुप्ति से उत्थान होता है तो जीवों को अपने कर्मानुसार जगत में पैदा होना पड़ता है । और वही क्रम चल निकलता है और सदा रहता है ।

अब सोचने वाले इस उपमा या तुलना के विवरण को समझ कर सुगमता से जान सकते हैं कि जीव को न केवल अपने जीवन ही में बन्धन का दुख और मुक्ति का सुख मिल सकता है किन्तु अपने जीवन के बाद ब्रह्म के जीवन में भी बंधन और मुक्ति का रगड़ा झगड़ा बना रहता है ।

दुनियाँ के सब मत मतान्तरों में हिन्दू धर्म सबसे बड़ा है। हिन्दू इस बात को सबसे अच्छा समझ सकते हैं। औरों को इन बातों को समझना तनिक कठिन है, क्योंकि उनके यहाँ प्रथम तो किसी बात की व्याख्या नहीं है, दूसरे शब्द नहीं हैं। तीसरे उनमें इनके समझने का संस्कार का कम होता है। समस्त सम्प्रदाय चूंकि हिन्दुओं ही से निकले हैं और उस की बुरी भली नकल है, इस लिये थोड़ी थोड़ी समझ तो उनमें भी है, लेकिन ज्यों का त्यों वह नहीं समझ सकते, और समझते समय उनको बड़ी घबराहट होती है।

मगर यह मुक्ति क्या हुई ! स्थायी (नित्य) मुक्ति तो नहीं है। माना बहुत दिनों की मुक्ति सही ! लेकिन झगड़ा तो ज्यों का त्यों बना ही रहा।

इसी दृष्टि से राधास्वामी मत इस सृष्टि, उत्पति और प्रलय के व्यौहार को काल चक्र कहता है और वह ब्रह्म को काल की पदवी देता है। क्या वह काल नहीं हैं ? जिसमें घट नाओं का लौटफेर होता रहता है, वही काल है। जो मनुष्य इस चक्र में फँसा हुआ है, उसकी नित्य मुक्ति कैसी है ? यह सोचने और समझने का विषय है। यों तो हमको भी इसी नूतन जीवन के पल पल में मुक्ति मिलती रहती है। रोग से छुटकारा पाना स्वास्थ्य और आरोग्यता है। यह भी मुक्ति है। दुख के दुख से छुटकारा पाना तृप्ति है। यह भी मुक्ति है और इसी प्रकार समझ लो। दुनियाँ में मुक्ति के हजारों लाखों और अनन्त रूप है। कोई किस किस का वर्णन करे।

राधास्वामी मत इन सबके अतिरिक्त और कुछ भी वर्णन करता है तो केवल उसीका श्रेय है। बातें निस्संदेह संकेत रूप कही गई है। जहाँ तक सम्भव होगा उनकी क्रमशः व्याख्या की जायगी। इस अवसर पर सार बचन राधा स्वामी का

शब्द सुनाया जाता है ।
जग जागत भी दुख मूल । सपना भी दुख सुख सूल ।।१।।
सुषुप्ति घर कुछ आराम । वह भी नहिं कहीं ठहरन धाम ।।२।।
तीनों में भरमत आठों जाम । पूरा नहीं कहीं बिसराम ।।३।।
अब करिये कौन उपाय । कासे अब पूँछू जाय ।।४।।
तड़पूँ और तरसूँ निसदिन । बिरह अग्नि जरूँ मैं निशिदिन।५।
कोई राह न सुख की गावें । सब करम भरम भरमावें ।।६।।
कोई तीरथ बरत बतावें । कोई जप तप माहि लगावे ।।७।।
निज भेद कहे नहिं कोई । विरथा नर देही खोई ।।८।।
यह सोच करा मैं भारी । तब सत गुरू आन सम्हारी ।।९।।
कर दया भेद बतलाया । तुरिया पद मारग गाया ।।१०।।
तुरिया से आगे बरना । फिर उससे आगे चलना ।।११।।
तिसके भी परे लखाया । उससे भी पार सुनाया ।।१२।।
तिस पर और समझाया । कुछ आगे और बुझाया ।-१३।।
वहाँ से पुनि आगे भाखा । निज धाम मुख्य यह राखा ।।१४।।
संतन गति अगम सुनाई । जहाँ वेद कतेब न जाई ।।१५।।
तुरिया में सब थक बैठे । आगे कोई मरम न देखे ।।१६।।
इतने पद संत बताई । बिन सुरत शब्द नहिं पाई ।।१७।।
सत् गुरु फिर भेद बतावें । अब खुल कर तोहि सुनावें ।।१८।।
तुरिया पद सहस कँवल में । तिस आगे चढ़ त्रिकुटी में ।।१९।।
दस द्वारा सुन्न में खोलो । फिर महा सुन्न चढ़ तोलो ।।२०।।
चढ़ भँवर गुफा तब आई । फिर सत्त नाम पद पाई ।।२१।।
वहाँ से भी चलो अगाड़ी । हुई अलख पुरुष दरबारी ।।२२।।
जाय अगम लोक को लीन्हा । लीला सब वहाँ की चीन्हा ।।२३।।
राधास्वामी धाम लखाया । अब यही ठीक घर पाया ।।२४।।
वह तुरिया भी नहीं पावें । बातों की तुरिया गावें ।।२५।।
तीनों में चेतन बरते । वाही को तुरिया कहते ।।२६।।

बाचक यह बड़े अन्यायी। अवस्था चौथी सोउ गँवाई ।।२७।
जोगेश्वर ज्ञानी पिछले। चढ़ मूर्धनी घट खेले ।।२८।।
उन चार अवस्था गाई। पंचम कहा चेतन भाई ।।२९।।
चारों से न्यारा गाया । ताहि आतम भाखि सुनाया ।। ३०।।
इन मूर्धनी घर त्यागा। मन अकाश आतम कह भाखा ।।३१।।
क्यों कर इन कहूँ बुझाई। इन बहुत ही धोखा खाई ।।३२।।
राधास्वामी कहत सुनाई। तुम बचियो इन से भाई ।।३३।।

——×——

राधा स्वामी दयाल की दया
राधा स्वामी सहाय

"गलती"।।

(लेखक—श्री हुज़ूर महाराज बाबू दीवान चन्द जी)

"गलती" अरबी भाषा का शब्द है। भारत की जनता इस शब्द का आम इस्तेमाल करती है। हिन्दी में इसके समानार्थक शब्द भूल और भरम हैं। गलती का मतलब है कि जब हम किसी चीज, आदमी, जगह या शब्द के रूप रंग और असलियत को न समझ कर, ना जान कर, अपनी अज्ञानता से उसे कुछ और ही समझ बैठते हैं तब हम गलती के जाल में फंस जाते हैं। आरम्भ में भी किसी को अपनी गलती का अहसास (भास) नहीं होता बल्कि उसका ज्ञान ही उस वक्त होता है जब असलियत जाहिर होती है या कोइ हकीकत का पता देता है या नतीजा निकलता है। दूसरे शब्दों में गलती एक रिलेटिव टर्म (Relative Term) है जो असलियत पर पर्दा पड़ने या छुप जाने का नाम ही गलती है। अगर असलियत न होती तो गलती का भी नामों निशां न होता।

वास्तव में ग़लती असलियत के सहारे जिन्दा है असलियत ही इसका आधार है। दरअसल असलियत को समझने, समझाने के लिए ग़लती का शब्द गढ़ा गया है। असलियत की हस्ती है। ग़लती या भूल भरम की कोई हस्ती नहीं। उदाहरणतया ग़लती से अधेरे में रस्सी को साँप समझ लिया गया। साँप का ख़्याल आते ही रस्सी में साँप के औसाफ दिखाई देने लगे और डर से देखने वाला थर-थर काँपने लगा। अब उसके पास जाने और पकड़ने की हिम्मत जाती रही। असल में वो साँप नहीं है। जब किसी ने रोशनी करके रस्सी को दिखा दिया तो साँप ग़ायब हो गया और केवल रस्सो रह गई। साँप का डर भी जाता रहा। जब हकीकत सामने आई तो गलती का अहसास हुआ। इससे पहले वो रस्सी सांप ही बनी हुई थी। अगर चे रस्सी हरगिज साँप नहीं हो सकती और न ही उसमें साँप के गुण आ सकते हैं, मगर गलती के जादू ने कुछ का कुछ दिखा दिया।

गलती के कारण :– ख्वाहिश, अज्ञानता, इन्द्रियों का सीमित ज्ञान और सीमित कर्म यह सब गलती के कारण हैं। आंख, कान, नाक, जवान, हाथ और पाँव आदि सभी इन्द्रियाँ सीमित हैं। इन सबकी सीमा है औरयह अपनी सोमा से आगे का ज्ञान या पता नहीं दे सकतीं। जैसे आंख से हम बहुत छोटी और बहुत बड़ी चीज को पूर्णतया नहीं देख सकते। परमाणु जो बहुत छोटे हैं उनको इन्सानी आँख नहीं देख सकती। समुद्र, पहाड़, पृथ्वी जो आकार में बहुत बड़े हैं। उनका सिर्फ अंश मात्र ही देख सकते हैं। बहुत दूर ओंर बहुत नजदीक चीज को भी हम आँख से नहीं देख सकते। इसी

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

प्रकार हमारे कान बहुत धीमी या बहुत तेज आवाज को नहीं सुन सकते। यही हाल बाकी इन्द्रियों का भी है। इससे सिद्ध होता है कि हमारी इन्द्रियों का ज्ञान सीमित है और इनके जरिए गलती के जाल में फंस जाना कोई ताज्जुब या गुनाह की बात नहीं है। मनुष्य जीवन की इन सीमित अवस्थाओं से सीमित पने का अनुभव होना एक स्वाभाविक बात है।

मूल रूप में इन गलतियों के दो रूप हैं एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म। सामाजिक और राजनैतिक गलतियों का सम्बन्ध स्थूल इन्द्रियों और स्थूल जगत से है और धार्मिक गलतियों का सम्बन्ध सूक्ष्म इन्द्रियों और सूक्षम जगत से है। स्थूल जगत का सीधा सम्बन्ध हमारे स्थूल जिस्म में स्थित दिल और अक्ल से रहता है। हमारी स्थूल इन्द्रियाँ बाहिर की तरफ खुलती हैं और जीव को बाहिरमुखी बनाती रहती हैं। आँख से बाहिर की ओर देखने में गलती हो सकती है। कान से बाहरी शब्द सुनने में गलती हो सकती है। नाक के जरिए बाहरी गन्ध या सुगन्ध को सूँघने में गलती लग सकती है। जबान के जरिए स्वाद लेने के ज्ञान में गलती हो सकती है। हाथ के जरिए छूने में गलती हो सकती है। इस तरह दुनिया में रहते हुए हमसे कोई न कोई गलती होती ही रहती है। कोई दिन महीना या वर्ष खाली नही जाता जब हम से गलती न होती हो। जो भी जिस्मधारी इस संसार में आया वोह जरूर किसी न किसी गलती में फंसा और उसने उसका फल भी भुगता। इन दुनियावी गलतियों का परिणाम हमें केवल शारीरिक और मानसिक तौर पर सुख व दुःख की शक्ल में भोगना पड़ता है।

इन गलतियों के प्रति सन्तों का मत है कि अनजाने में

गलती हो जाने पर कोई पाप नहीं लगता। परन्तु जानबूझ कर अपने स्वार्थ तथा हित के लिए दूसरों को गलती मे डालना महा पाप है।

धार्मिक गलती का सम्बन्ध सूक्षम जगत से और मनुष्य के चार अन्तःकरणों (मन बुद्धि, चित्त और अहंकार) से है। ये चारों अन्तःकरण अन्दरूनी इन्द्रिया कहलाती हैं और इनके जरिए अन्दर का ज्ञान यानि आत्मा परमात्मा, ईश्वर, परमेश्वर और ब्रह्म-परब्रह्म के ज्ञान का अनुभव होता है। इन सूक्षम इन्द्रियों की गलतियों का दण्ड हमको आवागमन यानि बार-बार जन्म-मरण की शक्ल में भोगना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सिवाय कर्त्ता-परमात्मा और गुरू के हर कोई गलती करता है। यहाँ पर गुरू से मतलब उस पूर्ण पुरुष देहधारी मनुष्य से है जो अभ्यास द्वारा अपने आपको कुल मालिक में अभेद कर चुका है।

मेरे ख्याल में गलती एक कुदरती खमीर है जिसके बिना पूर्णता का भास नहीं होता है। मैं गलती का मतलब अपूर्णता अथवा कमजोरी से लेता हूँ। जो वस्तु सर्वव्यापकता से बन्धन में अर्थात बेहद से हद में आ जाएगी तो कमजोर हो जाएगी। कमजोरी में गलती का हो जाना एक स्वाभाविक बात है। उदाहरणतया जंगल की खुली हवा जब किसी कमरे की चार दीवारी में बन्द हो जाती है तो उसकी वो शक्ति नहीं रहती जो बाहर की खुली हवा में है। उसकी वो पवित्रता भी नहीं रहती जो बाहिर थी क्योंकि वह हद के अन्दर आ गई है। इसी तरह पानी की एक बूँद समुद्र या दरिया से अलग होकर वो शक्ति नहीं रखती जो समुद्र या दरिया में थी। वास्तव में बूँद और समुद्र का पानी एक ही है परन्तु अंश

रूप में अलग हो जाने पर उसकी शक्ति कुल के बराबर नहीं रह सकती। इसके प्रति परम सन्त कबीर साहिब ने बहुत ही सुन्दर कहा है—

"हद बेहद दोनों तजे, वह सतगुरू का दास।"

अंश अथवा जुज का रूझान हमेशा अपने कुल की तरफ रहता है। इसलिए अगर कमी न होती तो तरक्की का इमकान न होता। तरक्की की जड़ गलती में है जैसे ज्ञान की जड़ अज्ञानता भ्रम और भूल में है। अगर भरम और भूल न होते तो लोग गुरू के पास क्यों जाते। वे सिर्फ अपने भरम और भूल को निवृत करने के लिए ही तो गुरू के पास जाते हैं। गुरू का शब्दार्थ प्रकाश करने वाला (गो=इन्द्रियाँ+रू =प्रकाश) या देने वाला है। अर्थात् जो कोई भरम या भूल को दूर करके अज्ञानता का पर्दा उठाकर जिज्ञासु के हृदय में ज्ञान का प्रकाश कर दे वही गुरू है।

जा गुरु से भरम न मिटे, भ्रान्ति न चित्त से जाय।
सो गुरु झूठा जानिए, त्यागत देर न लाए।"

(परम सन्त कबीर साहिब)

ये तो आपकी समझ में आ ही गया होगा कि गलती कोई गैर-कुदरती चीज नहीं बल्कि मनुष्य के स्वभाव का एक कुदरती अंग है। अब सोचना यह है कि गलती कहाँ से शुरू हुई। मेरे ख्याल में जब ब्रह्म में ये फुरना फुरी कि वो अपनी शक्ति का इजहार करे अर्थात सृष्टि की रचना करे तो उस वक्त "एकोऽहम बहुस्यामि" का शब्द प्रगट हुआ जिसका मतलब है कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ। जब एक अपने आपको अनेक में विभाजित (तकसीम) कर लेगा तो उसके खण्डों में वो शक्ति नहीं रहेगी जो पहले एक होने में थी-जैसे

समुद्र अगर कतरों (बूँदों) में बंट जाए तो उन कतरों (बूँदों) में समुद्र जैसी शक्ति नहीं रह सकती, इसलिए जब परमात्मा जीवात्मा बनकर जीवों में बंट गया तो जीव की वह शक्ति न रही जो परमात्मा की है। अंशा-अंशी के भाव से जीवात्मा और परमात्मा दोनों एक ही हैं परन्तु जिस्म के अन्दर महदूद होने से जब जीव में कमजोरी आई तो वह गलती भी करेगा। इसलिए गलती का आरम्भ ही सृष्टि के रचियता की अपनी फुरना से हुआ क्योंकि उसमें ख्वाहिश हुई कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ। ख्वाहिश का दूसरा नाम कमजोरी है। कमजोरी की हालत में गलती होने की अधिक संभावना रहती है। किसी कवि ने फारसी में बहुत ही सुन्दर कहा—

'हरके शेरा राकुनद रूबाह मिजाज।
एहतियाज अस्त एहितियाज अस्त एहतियाज।"

अर्थ :- जो चीज शेरों को लोमड़ी सिफ्त बना देती है वो ख्वाहिश है। ख्वाहिश है, ख्वाहिश है। कवि ने तीन बार दोहराह कर ताकीद पैदा कर दी है।

इसका नतीजा यह हुआ कि ब्रह्म ने तो एक से अनेक होने की केवल एक ही ख्वाहिश की परन्तु उसकी रचना में उसके प्रतिबिम्ब से करोड़ों, अरबों ख्वाहिशें पैदा हो गई। मैं तो कहूँगा कि जीव ख्वाहिशों का पुतला ही बन गया। एक कवि ने इसका बड़ा ही सुन्दर रूप लिखा—

हजारों ख्वाहिशों के हैं, हजारों दाम दुनियाँ में।
हजारों उनकी शक्लें हैं, हजारों नाम दुनियाँ में।"
"अगर खुशकिस्मति से हो गई पूरी जो इक ख्वाहिश
तो उसके सिलसिले में हैं हजारों काम दुनियाँ में।"

शास्त्रों में मनुष्य को मनुष्यता की कसौटी पर परखने के लिए पाँच विशेष कसौटियों का वर्णन है अर्थात काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। इनमें सबसे पहला स्थान काम का ही है और काम का अथ ख्वाहिश है। लोग आम तौर पर काम का अर्थ भोग वासना से समझते हैं परन्तु सन्त मत में सन्तों ने काम का मतलब ख्वाहिशात या कल्पनाओं का बताया है। परन्तु सन्त कबीर साहिब का कथन है–

"काम काम सबको कहे, काम न चीन्हे कोय।
जितनी मन की कल्पना, शाम कहावें सोय।"

किसी कवि ने भी उर्दू भाषा में ठाक ही कहा—

"सरापा आरजू होने ने, बन्दा कर दिया हमको।
वगरना हम खुदा होते, जो दिल बेआरजू होता।"

अर्थ :– सिर से लेकर पाँव तक ख्वाहिशों ने हमको जीव बना दिया। अगर हमारे अन्दर से कोई ख्वाहिश न उठती तो हम खुदा ही होते।

अब प्रश्न उठता है कि क्या हम ख्वाहिशों को खत्म कर सकते हैं? भाई! मेरे जीवन का तो यही अनुभव है कि ख्वाहिशें कभी भी खत्म नहीं होतीं। हाँ हम उनको आहिस्ता-आहिस्ता बदल सकते हैं यानि निचले दर्जे के ख्वाहिशों की बजाय ऊँचे दर्जे की ख्वाहिशों को अपने दिल में जगह देकर बेख्वाहिश होने की ख्वाहिश भी कर सकते हैं। उदाहरणतया अपनी निजी गर्जों को त्याग कर दूसरे के हित की गर्ज अथवा ख्वाहिश को अपने दिल में जगह देना शुरू कर दें। अपनी इच्छा की बजाय दूसरों की इच्छा पूर्ण करने की आदत डालें तो हम आजाद हो सकते हैं अर्थात मुक्त हो सकते है। इस तरह हम अपने जीवन में ताल्लुक में बेताल्लुकी और

बेताल्लुकी में ताल्लुक की आदत पैदा करके मनुष्य जीवन को सफल बना सकते हैं। जीवनकाल में गलतियों से घबराने की जरूरत नहीं है बल्कि उनसे सबक सीखने की जरूरत है। अगर आपके अन्दर उनसे सबक हासिल करने की आदत पड़ गई तो एक दिन ऐसा भी आ जाएगा कि आप गलतियों से आजाद होकर पूर्ण पुरुष बन जाओगे।

गलती होनी है और होती ही है इसलिए फिक्र की क्या बात है? गुरू किस लिए किया है? गुरू से नाम किस लिए लिया है? सिर्फ इसलिए कि हम गलतियों के अर्थात ख्वाहिशों के पुतले हैं और गलतियों को ठीक कराने के लिए गुरू की शरण में जाते हैं। आम तौर पर गलती होने पर भी हमको महसूस (भास) नहीं होता कि गलती हो गई है। इस लिये जब भी गलती महसूस हो जाये तो फौरन गुरू की शरण में जाना चाहिए और उनका शुक्रिया अदा करना चाहिए कि उनकी संगत से गलती का भास होने लग गया है। उनकी चरण शरण में जाकर गलती को कबूल करो और प्रार्थना करो कि क्षमा बख्शी जाए, साथ ही सुधार के लिये भी प्रार्थना करो। यदि गुरू जिस्मानी तौर पर सामने न हो तो अन्दरुनी गुरू के पास जाओ जो मनुष्य की दो आँखों के पीछे भ्रूमध्य में विराजमान है। मानसिक तौर पर मन को एकाग्र करके अपनी गलती के लिये प्रायश्चित करो और प्रण करो कि दोबारा इस गलती को नहीं करूँगा।

सतगुरू दया का समुद्र है वह आपको अवश्य ही क्षमा का दान बक्शेंगे। कर्मगति को तो हर सूरत में भोगना ही पड़ेगा परन्तु प्रायश्चित करने पर सतगुरू का बल आपके साथ बना रहेगा।

"सेवा हित चित से करूँ, फल की चाह न कोय।
सुख दुःख सिर ऊपर सहूँ, होना होय सो होय।"

बड़ी हैसियत रखने वाले आदमियों की गलतियाँ भी बड़ी होती हैं और छोटी हैसियत वाले आदमियों की गलतियाँ छोटी होती हैं। उदाहरणतया-किसी देश का राष्ट्रपति अथवा प्रधानमन्त्री अगर गलती करे तो उस देश को भारी नुकसान हो सकता है। और अगर कोई छोटा ओहदेदार गलती करता है तो नुकसान भी कम होता है। बस इसी तरह आम जीवों की गलती से उनको अधिकतर निजी हानि उठानी पड़ती हैं। मगर महात्मा गुरू या सन्त की गलतियों से सामाजिक व धार्मिक तौर पर प्राणीमात्र को बड़ा भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गलती करना मनुष्य के जीवन की एक बड़ी भूल है परन्तु गलती करके उसको छुपाना उससे भी अधिक भीरूपन है। बीमार होना एक कमजोरी है मगर बीमारी को छुपाना बीमारी को बढ़ाना और अपमें आपको तबाह करना है। इसलिए मैं तो यही राय दूँगा कि अपनी गलती को छुपाने की गलती कभी न की जाए। एक झूठ को छुपाने के लिये दूसरे सौ झूठ बोलने पड़ते हैं। इसी तरह एक गलती को छुपाने के लिए हजार गलतियाँ और करनी पड़ती हैं। मेरा निजी अनुभव यही है कि जहां तक हो सके इस भयंकर तथा बुरी आदत से बचते रहना चाहिए।

साधारणतया हम सब यही समझते है कि गलती को छुपाने से गलती की सजा टल जाएगी, पर ऐसा नहीं है। गलती का फल हमको भुगतना ही पड़ेगा। इसलिए यही अच्छा है कि हम साहस पूर्वक अपनी गलती को स्वयं मान करके उसको दूर करने की कोशिश करे। उसका सहल तरीका यही

है कि गुरू के पास जाकर सच्चे दिल से अपनी गलती व प्रायश्चित करके उनसे क्षमा तथा सहायता की याचना करें।

डरो मत, घबराओ मत, शरमाओ मत गुरू दया के सागर होते हैं। वे दुःखी जीव पर दया स्वाभाविक रूप से ही करते रहते हैं वे तुम्हारी भी अवश्य सहायता करेंगे।

अन्त में मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि गलती को हुआ मानकर उससे डरो मत यह एक कुदरती असूल के अन्दर होती है और उस असूल में हमारी तरक्की का राज छुपा हुआ है। दुनियाँ में ऐसा कौन सा इन्सान है जो अपनी तरक्की नहीं चाहता। वास्तव में यह इस कारण से है कि हम ब्रह्म के अंश हैं और ब्रह्म ही हमारी जात है। ब्रह्म का शब्दार्थ (ब्रह्=बढ़ना + म=मनन या सोचना) सोचना और बढ़ना है। जो चीज बढती और सोचती है वो ब्रह्म का ही अंश है। बढ़ने और सोचने की जो सिफ्त हमारी जात यानि ब्रह्म में है हम उससे कैसे अलग रह सकते हैं? इसलिए बढ़ना और सोचना इन्सानी फितरत में दाखिल है। यदि हम अपनी आँखें खोल कर इस दुनियाँ में चारों तरफ निगाह डालें तो हमें मालूम होगा कि इन्सान ही नहीं बल्कि हर चीज बढ़ने और सोचने में मसरुफ है। और हमारी बेचैनी (असन्तुष्ट) का कारण भी यही है कि हम इतना बढ़ना और सोचना चाहते हैं कि हद की चारदीवारी से निकल कर बेहद से भी परे चले जाएं ताकि हमारे अन्दर हदबन्दी की कमजोरी न रहे जिसकी वजह से हम आवागमन के चक्कर काट रहे हैं। बेहद में मुक्ति है और हद में बन्धन है इसलिए अगर आप जीवन मुक्त होना चाहते हैं तो हद से पार हो जाने का प्रयत्न गुरू की सहायता लेकर करते चलो। दाता दयाल की दया से एक दिन ऐसा आएगा कि आप अपने जीवन में जीवन मुक्तता का अनुभव करेंगे। सतगुरु आपका कल्याण करें।

—दीवान चन्द्र आहूजा

(पृष्ठ ८ का शेष)

होने में मदद दे सकता है, जो सच्चे दिल से उसके सम्पर्क में आते हैं और उससे निःस्वार्थ प्यार करते हैं। यह कुदरत का असूल है। प्यार सत्संगी की क्रिया एवं सेवा है और उन्मुखी अवस्था को सत्संगियों से बांटने एवं परम दवा की धारा बहा देने की प्रतिक्रिया सत्संगी की सेवा का फल है। सद्गुरु के इस प्रेम के प्रभाव से कोई बच नहीं सकता। शर्त यह है कि सद्गुरु से कोई न कोई नाता जोड़ दिया जाये।

बातों बातों में सत्संग दौरे की सूचना देते हुए मैंने आपको सद्गुरु और सत्संग की महिमा के बारे में भी बता दिया है। मैं आपको बता रहा था कि बनवारीपुर में त्यागी परिवार ने बड़े परिश्रम से सत्संगों का आयोजन किया। दूसरे दिन मैं प्रातः काल कई सत्संगियों के साथ वन्दना के सत्संग के बाद घूमने के लिए गया। वापसी पर कुछ श्रद्धालु सत्संगियों के घर भी गया। इस प्रकार हम मेरठ के लिए देर से रवाना हुये सायंकाल ५ बजे के करीब हम एक आदर्श नगर, मेरठ सोनू के माता पिता के घर पर पहुँचे। वहां से सत्संग और सायंकाल के भोजन के बाद करीब ८ बजे मुजफ्फरनगर के लिये रवाना होकर हम रात्रि के करीब १० बजे रुपेन्द्र बत्तरा के घर पर लोहा बाजार में पहुँच गये।

यहां पर पहले से हमारी प्रतीक्षा हो रही थी। काफी देर तक रुपेन्द्र के परिवार वालों और कुछ बाहर से आये हुए सत्संगियों से बातचीत होती रही। रात्रि के विश्राम के बाद ९ मार्च को हमारा कार्यक्रम वन्दना के सत्संग से आरम्भ हुआ। प्रातःकाल का सत्संग करीब ९ बजे शुरु हुआ। सत्संग का आयोजन श्री रुपेन्द्र बत्तरा के मकान-की हवेली में किया गया था। रुपेन्द्र बत्तरा के सभी परिवार वाले हमारे वहां पहुँचते ही सेवा में लग जाते है। मैं उनकी सेवा की सराहना इसलिए करता हूं कि वह बाहर से आये हुए सत्संगियों के

ठहरने और खाने पीने का बहुत अच्छा प्रबन्ध करते हैं। यहां पर मैं खासकर यह बताना चाहूंगा कि सत्संग के ज्ञान यज्ञ में श्री उतेन बत्तरा के परिवार वालों में से सबसे अधिक सहयोग उनकी पत्नी सुषमा का है। हमारे वहां ठहरने के दिनों में यह सुयोग्य पत्नी प्रातः काल ४ बजे से लेकर रात के ११ बजे तक हमारी और सत्संगियों की सेवा में जुटी रहती है। सत्संगियों की सेवा का महान फल मिलता है ऐसे सेवादार सत्संगियों के घर में सुख आनन्द और खुशहाली रहती है। मेरे विचार में बत्तरा परिवार इस सेवा के आधार पर सांसारिक सुख और परमानंद को प्राप्त करेगा।

एक बार साधना ने रुपेन्द्र बत्तरा की पत्नी से पूछा "आप महाराज जी के सम्पर्क में कसे आयीं ?" क्या आपने परमदयाल जी महाराज जी के सत्संग सुने हुये थे। सुषमा ने जो उत्तर दिया वह यहां पर लिखने के लायक है। उसने कहा, "हम परमदयाल जी को नहीं जानते थे। कुछ साल पहले हम कैथल गपे जहां पर मेरा पीहर है (माता पिता का घर) वहां पर हमें एक परिवार ने अखण्ड पाठ पर बुलाया। यह अखण्ड पाठ भागवत् या रामायण का नहीं था, बल्कि 'सिद्ध सत्पुरुष फकीर बाबा चमत्कारों से परे' नामक पुस्तक का था। जब हमने इस सुन्दर अखण्ड पाठ में सच्चे ज्ञान और सच्ची भक्ति की व्याख्या सुनी, तो हम गदगद हो गये। उसके बाद देहली में हमने हजूर मानव दयाल जी महाराज के सत्संग सुने। उनकी मेरे पति रुपेन्द्र बत्तरा पर सहज दया हो गयी और उन्होंने मुजफ्फर नगर हमारे घर पर सत्संग देने की स्वीकृति दी। अब तो यह हालत है कि साल भर बड़ी उत्सुकता से महाराज जी के यहाँ आने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। इस अवसर पर हमारे कैथल के पीहर वाले और सभी रिश्तेदार मुजफ्फर नगर आ जाते हैं और हजूर मानव दयाल जी महाराज की अमृत वर्षा का लाभ उठाते हैं।

केवल इतना ही नहीं, बल्कि दीदी सच तो यह है कि तुम्हारे शब्द पढ़ने से सत्संग और भी रोचक हो जाता है। कहते हैं कि परम दयाल जी के सत्संग में भी भण्डारों मात के शब्द पढ़ने से सत्संगी विशेष आनन्द प्राप्त कर देते हैं। हमारा और सभी सत्संगियों का यह कहना है कि साधना दीदी का शब्द पढ़ना उन्हें बहुत अच्छा लगता है।"

सत्संगियों के यह उद्गार उनकी श्रद्धा, विश्वास और प्रेम की निशानी है। वास्तव में रुपेन्द्र बत्तरा के घर पर सत्संग केवल सत्संग नहीं होते, बल्कि मानों एक पारिवारिक सम्मेलन होता है। न हि केवल रुपेन्द्र बत्तरा के परिवार वाले बल्कि मुजफ्फर नगर के बहुत से सत्संगी परिवार प्रेममय और श्रद्धालु हैं। श्री राजेश गुप्ता जो इस समय आगरा में स्टेट बैंक आफ इण्डिया में मैनेजर के पद पर काम कर रहे हैं, हर बर्ष अपने सारे परिवार के साथ मुजफ्फर नगर के सत्संग पर आया करते हैं। इसी प्रकार मेरे प्यारे नरेन्द्र त्यागी जो इस वक्त कोटला में स्टेट बैंक आफ इण्डिया के मैनेजर हैं, परिवार सहित मुजफ्फरनगर सत्संग में सम्मिलित हुआ करते हैं। इस प्रकार मुजफ्फर नगर का सत्संग एक पारिवारिक सत्संग बन जाता है। प्रातःकाल का सत्संग बहुत रोचक रहा और सभी सत्संगियों ने बड़े ध्यान और श्रद्धा से सुना। सायंकाल सत्संगी व्यक्तिगत रूप से मिलते रहे और कुछ सत्संगियों ने नाम दान लिया। इस दौरे के दौरान में हम चरथावल और मुण्डवर भी गये और हमेशा की भांति दोनों स्थानों पर सत्संगों का प्रभाव अच्छा पड़ा। १२ मार्च को हम देहरादून गये और वहाँ पर श्री कुलश्रेष्ठ के घर पर सत्संग देने के पश्चात मुजफ्फर नगर लौट आये। कार्यक्रम के मुताबिक हम १३ की रात्रि को सरसौंहेरी पहुँचे वहां पर श्री देवदत्त त्यागी, प्रधान जी, श्री जानेश्वर त्यागी

ओर बड़े बाबू जी की पत्नी अन्नदाता तथा इन्जीनियर साहब की पत्नी कृष्णा त्यागी ने हमारा स्वागत किया। दूसरे दिन प्रातःकाल सत्संग देने के बाद ओर दोपहर का भोजन करने के बाद हम यमुना नगर के लिये रवाना हो गये। सायंकाल श्री रमेश गोयल के घर पर शास्त्री नगर में एक विशाल सत्संग आयोजित हुआ। जिसमें यमुना नगर और जगाधरी के सत्संगियों के अलावा सरसों हेरी के सत्संगी भी शामिल हुये। श्री रमेश गोयल का सारा परिवार शरणागत है और उनकी श्रद्धा और आस्था के कारण मालिक की मोज से उनका परिवार और उनके देहली में स्थित सुपुत्र श्री राजेश गोयल का परिवार सुख और आनन्द का जीवन व्यतीत करता है।

१५ मार्च प्रातःकाल हम श्री बलवन्तसिंह लेबर आफीसर के निमन्त्रण पर अम्बाला में उनके घर पर सत्संग के लिये गये। दोपहर को हम देहली के लिये रवाना होकर सायंकाल देहली पहुँच गए। यहाँ से दो दिन के पश्चात हम देहली से रवाना होकर होशियारपुर पहुँच गये।

इस मासिक सन्देश में यहां तक के लिए सत्संग दौरे की सूचना काफी है। इन शब्दों के साथ मैं आप सबको इस महीने की हार्दिक सद्भावना और आशीर्वाद भेजता हूं। ऐ मेरे प्यारे सत्संगियो! मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि इन सन्देशों और मानव मंदिर के सत्संगों से लाभ उठाकर आप और आपके परिवार अपने घरों में सुख और शान्ति का जीवन बिताते हुए और ईश्वर में भक्ति का अनुभव करते हुए लोक और परलोक दोनों सुधार लें। सबको राधास्वामी।

आपका फकीरमय मानव

निवेदन :

इस बार यह अंक जौलाई और अगस्त का एक साथ प्रकाशित किया जा रहा है। हमें उम्मीद है कि इस प्रकार की दुविधा दुबारा नहीं होगी।

सभी ग्राहकों से अनुरोध है कि वह अपना वार्षिक चन्दा समय पर भेजें।

—व्यवस्थापक

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक
महेशचन्द्र मीतल
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक
श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या—170.

श्रीमान् Chilwar Narsimhlu (Book seller)
Vepo : Banswada 503187
Nizamabad (AP)

मुद्रक : श्रीमती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिंटर्स, लेखराज नगर, अलीगढ़